
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
Reg no.

बाज़ी

बाज़ी

नित्यानन्द वात्स्यायन

प्रगति प्रकाशन
नयी दिल्ली

मूल्य २॥)

प्रकाशक
प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, १४ डी, फ़ीरोज़शाह रोड,
नयी दिल्ली

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली

दिन-भर की गर्मी के बाद सन्ध्या की मंद हवा धीरे-धीरे चलकर मानो पथिकों की सारी श्रान्ति हर लेना चाहती थी। बाबू विन्ध्येश्वरीसिंह भी दिन-भर कचहरी में खटने के बाद मकान की छत पर आराम कुर्सी लगाये बैठे थे, उस हवा में अपनी श्रांति खो देने के लिए। आँखें बन्द, हाथ में गुड़गुड़ी का नैचा, और गोद में अखबार, मालूम पड़ता था कि वे सो रहे हों।

उन्हें बूढ़ा नहीं कहा जा सकता था, अभी उनकी उम्र ही क्या थी। यही पचास-पचपन तो। शरीर स्वस्थ था, हालाँकि चर्बी का कुछ आधिक्य हो गया था। लेकिन तब भी स्वस्थ थे। देह भरी-पूरी थी। उम्र का अन्दाज़ लगाने के लिए खोपड़ी का गंजी होना ही एक चिह्न था। चश्मा तो खैर, सब ही लगाते थे।

हवा का एक झोंका आया और विन्ध्येश्वरी बाबू के गोद से उड़कर अखबार दूर। चला गया विन्ध्येश्वरी बाबू ने अंगड़ाई ली एक लम्बी सा ऊँ...ऊँ की ध्वनि के साथ।

उसी समय उनकी स्त्री केतकी ने छत पर पाँव रखा। अखबार उठाते हुए बोली, "यही अखबार पढ़ा जा रहा है।"

विन्ध्येश्वरी बाबू मुस्करा कर बोले—"जरा झपकी लग गई थी" केतकी वहीं आकर, उनके पाँवों के पास बैठ गई "यह क्या करती हो" कहते हुए उन्होंने उठाने का उपक्रम किया, किन्तु घुटने पर केतकी के हाथों के दबाव ने उन्हें फिर बिठा दिया।

"यह क्या आदत है तुम्हारी पाँवों में बैठने की ?"

केतकी हँस पड़ी, "मेरा स्थान है, जानते ही हो, स्त्री पाँवों की जूती होती है।"

"दत् यह सब बकवास है !"

"बकवास क्यों, सच ही तो है, एक टूटी तो दूसरी पहन ली" केतकी की आँखें दुष्टामी से भरी थीं। संध्या के समय में वह मुस्करा रही थी, किन्तु विन्ध्येश्वरी बाबू की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी। वे खिन्न हो उठे क्योंकि केतकी उनकी दूसरी स्त्री थी।

"केतकी !" उन्होंने गम्भीर होकर कहा, "क्या मैंने तुम्हें कभी भी किसी तरह का कष्ट दिया है ? जब से तुम आई हो क्या कभी भी मैंने तुम्हें गौण समझा है। तुम्हारे आने के बाद से मुझे कभी भी यह मालूम नहीं हुआ कि तुम ही मेरी स्त्री नहीं रही हो, कि कभी कोई और भी थी।"

केतकी हँस पड़ी। "यही तो मैं भी कहती हूँ, और अगर आज मैं मर जाऊँ तो आप मुझे भी वैसे ही भूल जायें जैसे कि दीदी को भूल गये हैं। मैंने उन्हें देखा नहीं लेकिन मैं उन्हें भूल नहीं सकती हूँ—वे अपनी निशानी जो मेरे पास छोड़ गयी हैं।"

"क्या ?"

"प्रेम—"

"प्रेम ! केतकी ! प्रेम को देखकर कौन कहेगा कि वह

तुम्हारा लड़का नहीं है। मैंने तो कभी यह नहीं समझ पाया है कि उसकी माँ मर चुकी है—"

"मरी कैसे, मैं तो सशरीर यहाँ हूँ—और कौन कहता है कि प्रेम मेरा लड़का नहीं है?"

"तुम्हारा तो है ही। तुम्हीं ने पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया। दूसरी होती तो जान मार डालती।

केतकी चुप हो गई थी, उसकी आखें दूर अतीत की ओर लगी थीं। कुछ देर बाद उसने धीरे से कहा, "जानते हो, नुनू क्यों मर गया था?" नुनू केतकी का अपना बच्चा था, जो एक मास का होकर ही मर गया था।

"नहीं डाक्टर ने तो कहा था डिपथीरिया"

"डाक्टर बेवकूफ था! लेकिन नुनू के आने के बाद से मैं प्रेम से दूर रहने लगी थी—उस की पर्वाह नहीं करती थी—इसीलिए भगवान् ने नुनू को बुला लिया था..." उस का सिर विन्ध्येश्वरी बाबू के घुटनों पर झुक गया विन्ध्येश्वरी बाबू ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"नाहक जी खराब करती हो चलो नीचे चलें"

"चलो" वे उठ खड़े हुए, एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए

"एक बात कहूँ?" केतकी ने पूछा।

"कहो"

"प्रेम की शादी कर दो, अब तो इम्तिहान भी पास कर चुका है, डाक्टर हो गया, अब तो बहाना न कर सकेगा।"

तीन वर्ष पहले, जब विवाह की बात उठी थी तो प्रेम ने इन्कार कर दिया था, पढ़ने का हवाला देकर।

"राजी हो तब न, आजकल के लड़के तो पढ़-लिखकर हमसे ज्यादे अकलमन्द हो जाते हैं"

"राजी मैं कर लूँगी"

"तो करो, कमलेश्वरी बाबू तो कब से कह रहे हैं, उनकी लड़की भी खराब नहीं है।"

"वहाँ नहीं"

"तब ?"

"तुमने तो मेरी सखी की लड़की को देखा ही है, प्रेम भी तो उसकी तारीफ करता था"

"कौन मीना ? हाँ, लड़की तो वह भी अच्छी है"

"सुन्दर, पढ़ी-लिखी सब-कुछ तो है"

"पढ़ी-लिखी जरूर है पर सुन्दर ! उहूँ—"

"वाह, फूल-सी सुन्दर है"

"तुम-सी होती तो सुन्दर मानता"

"जाओ—बड़े वैसे हो तुम" हाथ छुड़ा कर केतकी दूर हट गई "तो प्रेम से बात करूँ ?"

"तुम्हारा लड़का है, जानो तुम, जाने तुम्हारा काम, बहू आयेगी तो तुम्हारी सेवा ही न करेगी ? तब मुझ से क्या पूछती हो ? मैं तो हुक्मी बन्दा हूँ, जो कहोगी करूँगा।"

"बचने में तो होशियार हैं। क्या दिन-भर कचहरी में यही सीखा करते हैं ?"

"तुम रहती तो, सीखता भी। वहाँ तो सब खूसट रहते हैं कोई क्या सीखेगा"

"अच्छा चलो बातें न बनाओ।"

पहले उतर कर केतकी सीधे प्रेम के कमरे में गई। प्रेम का कमरा प्रकाशित था; वह मेज के सामने बैठा कुछ लिखने में मस्त था। उसने केतकी के आने की आहट नहीं पाई, लिखने में ही व्यस्त रहा।

और केतकी ने धीरे-धीरे आगे बढ़, झट प्रेम के हाथों से

कापी छीन ली और, अपने हाथ में की एक फोटो उसमें छिपा दी।

"कौन! मां?" प्रेम ने उठते हुए कहा।

"हाँ—तुम इस संध्या को यह क्या लिख रहे हो? अब कौन-सा इम्तिहान देना है जो इतने व्यस्त?"

"क्यों? क्या इम्तिहान के लिए ही पढ़ा जाता है मां? तब तुम क्यों पढ़ती हो?"

"मैं संध्या को तो नहीं पढ़ती।"

"पढ़ तो मैं भी नहीं रहा था"

"अच्छा लिख रहे थे क्या लिख रहे थे?" केतकी ने पढ़ना चाहा किन्तु प्रेम ने झट कापी छीन ली और लजाकर बोला—"ऐसे ही कुछ"

"कुछ क्या?"

"कहानी है"

"ओ हो अब कहानी लिखने लगें हैं इसी लिये..."

"इसीलिए—क्या?"

"इसीलिए चोरी की थी।"

"चोरी? कैसी? किस चीज की!"

"अनजान बनते हैं, कुछ पता ही नहीं"

"सच—मुझे नहीं मालूम, क्या खोया है?"

"मेरे रूम से एक फोटो आज ही आया था"

"तुम्हारा फोटो! मैंने माँगा कई दफे—लेकिन तुम नहीं देती हो न मां अच्छा"

"मेरा नहीं, पगले एक लड़की का था"

"ओह! तब मैं क्या करूँगा लेकर"

"क्या? बड़ी सुन्दर लड़की है"

"मुझे मतलब?"

"क्यों, कहानी लिखते हो ? और सुन्दर लड़की के फोटो से मतलब ? उसका वर्णन करना, और क्या ?" केतकी हँस पड़ी, "आजकल के लड़के सब ऐसे ही होते हैं जहाँ किसी का सुन्दर फोटो देखा, चुरा लिया।"

"मुझे भी तुम ऐसा समझती हो मां ?" प्रेम ने पूछा, "मैंने सचमुच नहीं लिया है। मुझे लेना होता तो क्या मैं तुम से नहीं ले सकता था ?"

"होगा तो तुम्हारे ही पास अब बनते हो"

"देख लो अगर हो तो"

"और अगर मिल जाय ?"

"मिलेगा कहाँ से हो तो मिले ?"

"अगर मिल जाय ? बाजी लगाते हो ?"

"रही बाजी इसी अँगूठी की" प्रेम ने हाथ की अँगूठी हिलाते हुए कहा।

"उस अँगूठी की, मैंने ही तो दी है, उसे मैं क्यों लूँगी। तुम देना अपनी बहू को इस कलम की बाजी लगाओ" मेज पर से Parkette पेन उठाते हुए केतकी ने कहा।

"अच्छा, उसी की सही लेकिन, माँ, अगर मैं जीता तो घड़ी लूँगा"

"अच्छा।"

केतकी ने इधर-उधर देखना शुरू किया। यों ही प्रेम खड़ा रहा ओठों पर मन्द मुस्कराहट लिये। अन्त में केतकी ने कहा—"देखूं वह कापी उसी में होगी" और प्रेम ने ज्यों ही कापी झाड़ी तो वह फोटो निकल आया। वह बेचारा लजा गया।

"लाओ कलम" केतकी ने कलम उठाई और फोटो ले और चलने का उपक्रम किया।

"लेकिन माँ मैं लिखूंगा अभी कैसे ?"

"सो मैं क्या जानूँ तुम हार गये कलम मैंने ले ली तुम लिखो इस पेंसिल से।" एक टूटी हुई पेंसिल उसे देते हुए केतकी ने कहा। प्रेम हँस पड़ा—

"अच्छा, माँ, यह तो बताओ कि फोटो है किसका ?

"क्या करोगे पूछ कर ?"

"पता तो लगे कि किसकी फोटो के लिये मुझे कलम देना पड़ा"

"लो देखो ! है न सुन्दर ?"

"प्रेम ने फोटो ले लिया—"हाँ है तो सुन्दर लेकिन मालूम होता है जैसे नकली हो।"

मेरी सखी शकुन्तला को चीन्हते हो न ? उसकी लड़की है मीना इसने भी तो अभी आई० ए० पास किया है।"

"हाँ, देखा था एक दफे नाच में शायद किसी चैरिटी के लिए हुआ था गाती है बड़ा अच्छा" प्रेम ने सोचते हुए कहा।"

"हाँ गाती है बड़ा अच्छा ! अच्छा, प्रेम अब तो तुम डाक्टर हुए। प्रैक्टिस करोगे न ?"

"पढ़ा और किस लिये है माँ ?

"तो मैं एक मरीज देती हूँ...."

"कौन यही देवी जी ?"

"न इसकी माँ ! बेचारी कई दिन से बिमार है, लेकिन अभी तक इलाज में सफलता नहीं मिली है। तुम भी जाकर देख आते, हो सके तो इलाज भी करते, बाहरी आदमी तो पैसे के लिए ही जाता है। तुम जरा अपनेपन से देखते।"

"तुमने कहा नहीं पहले..."

"पहले तुम डाक्टर थोड़े ही थे। अभी कल ही तो रिजल्ट

निकला है। अब डाक्टर हुए हो—अब जाओगे तो इज्जत होगी"

"जब कहो तब चला जाऊँ। कहाँ रहती हैं ?"

"रहती है झाझा में, उसके पति वहीं काम करते हैं"

जब कहो तभी चला जाऊँ।"

"दो-एक दिन में, मैं उनसे भी पूछ लूँ"

"अच्छा"

केतकी चली गई। और प्रेम उसी की ओर देखते-देखते सिर खुजाता खड़ा रहा। फोटो उसी के हाथ में था उसने फोटो देखा ध्यान से "हूँ कहीं अपना इलाज न कराना पड़े आप से"—उसने कहा और फिर बैठ गया—कहानी लिखने। परन्तु सुर जमा नहीं, ध्यान उचट गया था।

कोई कष्ट ऐसा नहीं जिसमें सुख निहित न हो। कष्ट जीवन में आते हैं, किन्तु उनके बाद आने वाले सुख की मिठास इसी लिए अधिक ज्ञात होती है। दिन का महत्व इसी लिए है कि वह रात के बाद आता है।

प्रेम के जीवन में जब दुख आया था तो वह नन्हा सा बच्चा था। चार वर्ष की उम्र में उसकी माँ मर गई थी और एक वर्ष के ही बाद उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली थी।

प्रेम को, हालांकि वह बच्चा ही था, घर वालों ने डरा दिया था। 'नयी माँ' के आने की खुशी में जब वह किलक उठता कोई उसे कह देता, "आने दे न उसे, मार ही डालेगी" प्रेम यह न समझ पाता कि माँ—नयी ही सही—क्यों उसे मार देगी! माँ से उसे हमेशा आदर ही मिला था माँ शब्द ही उसके हृदय में स्नेह का भाव जगा देता था, तब, नयी माँ क्यों उसे दुख देगी। फिर भी अज्ञात डर उसके दिल में बैठ गया था। और जब, एक दिन नयी माँ ने प्रवेश किया घर में तो धूलधूसर प्रेम उस सुन्दर मूर्ति के समीप भी न जा सका। उसे बारात में नहीं ले गये थे उसके पिता, कुछ इस अभिमान से,

और कुछ भयमिश्रित शंका से, वह घर के पिछवाड़े छिप रहा था।

घर में अन्य कोई स्त्री थी नहीं, इसीलिए, केतकी ने आते ही घर का भार सहन कर लिया था और घण्टे-भर के बाद ही वह स्वयं उसे खोजती हुई आई थी और भीतर ले गई थी।

"कहाँ छिप गये थे तुम?" उसने उसको चुम्मा लेते हुए पूछा था। प्रेम निरुत्तर रह गया था और केतकी की गोद में बैठा रह गया था, किन्तु जब दाई ने अचानक कहा "देख-सब कपड़े मैले कर दिये तूने" तो इतना भयभीत हो उठा था कि केतकी को रुलाई-सी आ गई थी।

और उसके बाद प्रेम ने देखा कि नयी माँ ने उसे मारने के बजाय दुलार करना शुरू कर दिया था।

वह सात वर्ष का था जब कि उसकी नयी माँ बिमार पड़ी थी। वह कितना रोता था तब उसको पूछने वाला कोई नहीं था। बाप उसे भूल ही गये थे, नयी माँ बिमार थी। निराधार, निस्सहाय-सा वह घूमता, नौकरों की दया का पात्र। वे भी कहते, "अब सुख के दिन गये बेटा तुम्हारा दुश्मन आ रहा है।" वह समझता नहीं, किन्तु डर जाता कभी-कभी रो देता।

और, तब एक दिन उसने माँ के कमरे में किसी बच्चे के रोने की आवाज सुनी। उसे कई दिन से उस कमरे में नहीं जाने दिया गया था। वह छिपकर पहुँचा, किवाड़ की आड़ में खड़ा था वह। उसके पिता डाक्टर से बातें कर रहे थे। और तब वे बाहर निकले, घबड़ाये हुए-से। किवाड़ की चोट प्रेम को लगी, वह चिल्ला कर गिर पड़ा था, और उसे चुप करने के बजाय उसके पिता ने एक तमाचा और जड़ दिया था।

फिर, जब माँ ठीक हो गई थी, वह गया था 'भाई' को

देखने। उसने देखा था मां कैसे प्रेम से उसे थपका रही थी, उसे ईर्ष्या हुई थी जबरदस्त। उसके बाल हृदय में प्रतिहिंसा जाग्रत हुई थी, शायद उसके मनोगत भाव उसके चेहरे पर अंकित हो उठे थे क्योंकि उसने जैसे-ही बच्चे को छूना चाहा था उसकी नयी माँ ने उसे डाँट दिया था और तब उसने सोचा था कि क्या वह बच्चा सचमुच उसका दुश्मन है ?

किन्तु, जब कुछ दिन बाद वह बच्चा एक दिन बिमार पड़ गया था, उसे कई दिन तक देखने को भी नहीं मिला था। वह कितना उदास रहता था ! जब, उसने देखा कि उसके पिता उसे लिये जा रहे हैं कपड़े में लपेटे, उसने सुना था कि वह मर गया है तो वह कितना छटपटाया था ! और तभी, उसे मां ने फिर अंकवार में भर लिया था रोते हुए, कितना भीषण रोना था वह ! तब से उसकी मां उसे फिर दुलराने लग गयी थी तो क्या सचमुच वह बच्चा उसका दुश्मन था ?

फिर उसने पढ़ना-लिखना सीखा था नयी मां के गोद में ही उसे अब वह नई मां न कह कर मां ही कहता था—मां मां !

माँ से कितना जल्दी उसने पढ़ना सीख लिया था, कितने सीधे तरीके से वह पढ़ाती थी ।

तब एक दिन जब उसने पूछा था माँ से—हिचकते हुए किन्तु अत्यन्त गम्भीरता से—"माँ फिर एक भाई नहीं लाओगी ?" तो मां ने उसे कस कर छाती से चिपटा कर कहा था "नहीं बेटा ! हमारे बीच में अब कोई नहीं आ सकेगा। उसे कितना आनन्द हुआ था वह मां की आँखों की करुणा को देख नहीं पाया था ।

किन्तु तब से आज तक उसके और माँ के बीच कोई नहीं आ सका था। पिताजी भी नहीं !

सब से अच्छी बात थी कि मां उससे बहुत बड़ी भी नहीं थी सिर्फ बारह वर्ष ही न बड़ी थी। इसीलिए वह मां के अत्यन्त निकट पहुँच सका था।

एक दफे, बीमार पड़ने पर, उसने देखा था, माँ रात-भर जगकर उसे पंखा कर रही है, एकटक दृष्टि उस पर गढ़ाये वह माँ को देखकर हँस पड़ता था इसी कारण वह बच भी तो गया था डाक्टर ने तो कहा ही था, मां से "आप ने बचा लिया, वर्ना यह तो गया ही था।" उसे माँ के शब्द याद थे, "भगवान् ने मुझे यही तो एक लड़का दिया है—क्या देकर वे फिर छीन लेते ?"

कौन कहता था कि वह उसकी सौतेली माँ थी ? प्रेम झगड़ जाता था इस बात पर—मां से भी—वह उसकी "मां थी" माँ थी, 'मां, थी'

और आज ? आज वही माँ उसे भेज रही थी एक अज्ञात स्त्री की ओर। प्रेम ने मीना को कई दफे देखा था, किन्तु वह क्षणिक परिचय ही था। उसे तो मीना एक अलहड़ मुँहफट लड़की ही मालूम हुई थी। पढ़ती थी वह भी, गाती भी थी किन्तु, प्रेम उसका चटकीलापन नापसन्द करता था। उसकी आदत हो गई थी हर किसी की तुलना माँ से करने की और इस हिसाब से मीना फेल कर जाती थी।

वह समझ रहा था इस यात्रा का उद्देश्य। कईदफे 'शकुन्तला मौसी' ने—मीना की माँ को वह मौसी ही कहता था; माँ की सखी थी, जिक्र भी किया था, किन्तु केतकी टालती ही आई थी, पढ़ ले, पास कर ले तब, और अब तो प्रेम पास कर चुका था, डाक्टर हो गया था। इसीलिए माँ उसे भेज रही थी, ।

वह हँस पड़ा ! माँ साफ बात कह देती तो ! माँ का हुक्म टालने की शक्ति उसमें नहीं थी। वह कह देती, मीना से तुम्हारी

शादी होगी तो वह मान ही लेता। किन्तु माँ ने उसे भेजा था पसन्द करने के लिए।

चलते समय उसने कह दिया था माँ से—"तुम्हारी-सी होगी तो ठीक; नहीं तो—" और माँ ने एक हलकी-सी चपत लगाते हुए कहा था, "दुत पागल, मुझसे अच्छी होगी"

माँ से अच्छी ? असंभव ! प्रेम यह कल्पना भी न कर सकता था। खैर अब तो जा ही रहा था।

बाबू मानिकचन्द्र सिंह भाभा के निवासी थे। पुश्त-दर-पुश्त से आप यहाँ रहते चले आये थे। किसी समय आपका खानदान यहाँ पर सबसे धनी गिना जाता था, किन्तु समय के प्रभाव से और कुछ अपने पूर्वजों की लापरवाही से जमींदारी का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका था, मारवाड़ियों की तोंद में समा गया था। बाकी रह गयी थी इज्जत और एक छोटी-सी जमींदारी। किन्तु मानिक बाबू के प्रयास से, तथा समझदारी से अब उनकी स्थिति अच्छी हो गई थी। एक बीड़ी का कारखाना भी खोल दिया था और तेल पेरने की कल भी। इसलिए स्थानीय धनियों में उनका नाम था। इज्जत पहले से थी, अब धन भी हो गया था।

खयाल भी इनका वैसा ही खान्दानी था। हँसमुख, पेट के लिए जीते अर्थात् पेटू, लापरवाह, शान और आन पर जान देने वाले, मोटे तगड़े। मानिक बाबू जब सजधज कर टहलने निकलते, तो आपकी मूँछें दोनों बगल मानों एन्टिएयरक्राफट गन की तरह निकली रहतीं। कनपटी पर के केश श्वेताभ हो चले थे किन्तु आपके शरीर की फुर्ती अभी तक बनी हुई थी।

आपको बगीचे का शौक था। घर के चारों ओर बड़ा सुन्दर बगीचा लगाये थे। फूलों की तारीफ करके, उनके लगाये आम, नींबू इत्यादि को सर्वश्रेष्ठ कहकर, उनसे मनमाना काम लिया जा सकता था।

आप में सिर्फ एक नुक्स था, नई रोशनी की हवा आपको लग गयी थी। इसीलिए आपने अपनी एकमात्र सन्तान मीना को पढ़ाया था, पत्नी के विरोध करने पर भी, और उसे एकदम स्वतन्त्र विचार रखने की अनुमति दे रखी थी। मीना भी, होस्टल में रहकर, पढ़-लिखकर, आधुनिक फैशन की पुतली बन गई थी! गृहस्थी से चिढ़, रसोई-पानी करने को कहो तो मानो अपमान करते हो, मीना का संसार आत्मसीमित था। इसी कारण माँ-बेटी में नहीं बनती थी। किन्तु इससे क्या? बापू-बेटी में बन ही जाती थी। मीना को रोगिणी माँ का डर नहीं था। 'ओल्ड फैशन्ड' कहकर वह माँ को 'डिसमिस' कर देती थी।

आई० ए० की परीक्षा देकर मीना घर आ गई थी। माँ के सतत बकने, झकने का परिणाम यह हुआ था कि मानिक बाबू ने वचन दिया था, कि वे उसे फिर कालेज न भेजेंगे बल्कि विवाह कर देंगे, और तब ससुराल वालों की इच्छा के मुताबिक ही उसकी पढ़ाई चलेगी। मीना इस बात को सुनकर जल गई थी, माँ को उसने खूब खरी-खोटी सुनाई थी।

उसकी माँ शकुन्तला चिर रोगिणी थी। अब तो डाक्टर ने उसे थाइसिस का शिकार करार दिया था। हरदम खाट पर पड़ी रहती 'खों-खों' खासना और पान-मिश्रित कफ थूकना, यही उसका काम था। और चूंकि मीना कालेज ही रहती थी। अतः शकुन्तला की सेवा का भार पड़ा था एक नर्स के ऊपर। शकुन्तला ने आपत्ति की थी, दाई से काम चल जायेगा। किन्तु नई

रोशनी के प्रभाव से मानिक बाबू ने नर्स को ही अधिक ठीक समझा था।

"व्यर्थ रुपया बरबाद करोगे। दाई तो काफी है।" शकुन्तला ने कहा था।

"रुपया है किसलिए, अगर उससे हम सुख न उठा सके तो कमाना ही व्यर्थ है, फिर नर्स लेगी क्या? ३०, ४० में तो आ जायगी।"

"मेम का छुआ न खाऊँगी।"

"तो क्या हिन्दुस्तानी नर्स नहीं मिलती है?"

"कौन जाने कौन जात हो।"

"पुराना ढकोसला........फिर, वह कुछ रसोई तो बनायगी नहीं।"

तभी एक नर्स के लिए विज्ञापन निकला था और आ भी गई थी वह।

अभी लड़की ही थी। राधारानी नाम था उसका। मालूम पड़ता था जैसे अत्यन्त दुख उठा चुकी हो, लेकिन अपने काम में दक्ष थी। और शकुन्तला के लिए सन्तोष की बात, धार्मिक विचारों की थी।

कुछ दिनों के अन्दर ही उसके प्रति शकुन्तला का विरोध भाव जाता रहा था। राधा के शान्त स्नेहमय व्यवहार ने उसे मुग्ध कर लिया था। बीमारी में भी सुख होता है यह उसने अभी जाना था। राधा उसे 'माँ' कहती।

मानिक बाबू के परिवार में एक प्राणी और था। वह था शकुन्तला का भतीजा नरेन्द्र। मातृ-पितृ-हीन होकर आजकल यहीं आया हुआ था। पढ़ा-लिखा, आधुनिक विचार का। दिन-भर मानिक बाबू की बन्दूक लिये इधर-उधर घूमता रहता, कभी दो-एक चिड़ियाँ मिल जातीं।

और इसी छोटे-से संसार में, एक दिन साँझ को प्रवेश किया प्रेम ने।

सूट-बूट डांटे, हैट बगल में दबाये, डाक्टरी बैग लिये। सचमुच वह डाक्टर मालूम होता था।

केतकी ने पत्र दे दिया था पहले ही। उसकी अगवानी के लिए मीना तथा नरेन्द्र दोनों स्टेशन पर उपस्थित थे। मीना ने 'हलो डाक्टर प्रेम' कहकर स्वागत किया था। डाक्टर प्रेम! ठीक तो, वह उसकी माँ का इलाज करने ही आया था न!

लेकिन मीना की आँखों में वह चपल दुष्टामी क्यों झाँक रही थी। क्या उसने प्रेम को चिढ़ाने के लिए ही 'डाक्टर' सम्बोधन किया था? प्रेम समझ न सका।

उसने नरेन्द्र को देखा। नरेन्द्र भी मन्द मुस्कान के साथ उसे ही देख रहा था। कुछ क्षण दोनों यों ही एक-दूसरे को देखते रह गये। तब प्रेम ने हँसकर पूछा "पास हुआ?" नरेन्द्र भी हँस पड़ा "पास-फेल घर पर चलकर होइयेगा" उसने कहा "चलिये।"

प्रेम के लिए कमरा ठीक था। सामान इत्यादि धर दिया गया। हाथ-मुँह धो, भारतीय लिबास पहन जब प्रेम निकला तो चाय तैयार थी मेज पर।

"पहले मौसी को देख न लेता?" उसने कहना प्रारम्भ किया।

"बाकायदा डाक्टरी ढंग, पहले कर्तव्य।" मीना ने फिर कहा—"सो तो देखोगे ही। चाय-चाय तो पी लो" मानिक बाबू ने भी कहा।

प्रेम को बैठना पड़ा, किन्तु उसे मालूम हो रहा था जैसे मीना उसे चिढ़ा रही हो—चुपचाप। नरेन्द्र सिर नीचा किये चाय के प्याले में ही देख रहा था।

"क्या देख रहे हो, नरेन्द्र?" मानिक बाबू ने पूछा।

"किस्मत।"

"किस्मत ? किस की ?" उत्सुक होकर मीना बोली ।

नरेन्द्र हँस पड़ा, "सब की"

"प्रेम ने कुछ चिढ़ कर कहा "क्या मेरे आने से आपको किस्मत जाँचनी पड़ गई, नरेन्द्र बाबू ?"

"नहीं, किन्तु किस्मत देखना तो मेरी आदत ही है।"

"क्या देखा ?" मानिक बाबू ने पूछा ।

"सफलता।"

"किस की ?"

"डाक्टर प्रेम की।"

"डाक्टर के प्रेम की तो नहीं ?" मीना प्रेम को ओर देख रही थी। प्रेम ने सिर झुका लिया। कितनी फारवर्ड है वह सोच रहा था। और मन-ही-मन माँ से उसकी तुलना कर रहा था।

चाय-पानी के बाद मीना ने कहा—"चलिये डाक्टर साहब! आपके पेशेन्ट से मुलाकात करा दूँ।" प्रेम उठ खड़ा हुआ। स्टथोस्कोप इत्यादि जेब में रखे ही था।

शकुन्तला के दरवाजे पर मीना रुक गई।

"माँ !" उसने पुकारा, "डाक्टर प्रेम आये हैं।"

"आओ बेटा, भीतर आ जाओ !" शकुन्तला ने स्वागत भरे स्वर में कहा, "बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं है। तुम तो मुझे पहचानते भी न होगे ?" प्रेम ने भीतर जाकर प्रणाम किया संकुचित होकर, और पास के स्टूल पर बैठ गया।

"कई बरस हो गये, मौसी।" उसने कहा।

"हाँ, दस, ग्यारह बरस तो हो गये" शकुन्तला की आँखें अतीत की याद से चमक रही थीं। "लेकिन, कितनी मिठाइयाँ खिलाई हैं मैंने, याद तो होगा ?"

दरवाजे के बाहर से ही मीना ने कहा, "तो डाक्टर साहब,

मैं जाती हूँ। आपको सब आवश्यक सूचना राधा से मिल जायगी।"

"वह भीतर शायद ही कभी आती हो। मुझे थाइसिस जो है।" शकुन्तला ने दुखित होकर कहा।

प्रेम का ध्यान तब राधा की ओर गया—"यह ?" उसने पूछना चाहा।

"नर्स है, राधारानी"

"ओह" प्रेम का संकोच जाता रहा। उसने एकदम प्रोफेशनल ढंग से प्रश्न पूछा—राधा से। शकुन्तला से जाँच-पड़ताल की।

लेकिन, उसके दिमाग में खटक रहा था 'वह भीतर नहीं आती—मुझे थाइसिस है—' 'अगर माँ को थाइसिस हो जाय तो क्या मैं वहाँ न जाऊँगा ?' उसने सोचा। दूसरे ही क्षण वह काँप उठा ! क्या सोचने लगा !

परीक्षा समाप्त कर, उसने राधा को देखा, वह नर्स के लिबास में नहीं थी। साधारण-सी धोती पहने—भले घर की लड़की ही ज्ञात होती थी। लेकिन मौसी ने कहा था—नर्स है, खैर। उसने डाइरेक्शन दिये, प्रेस्क्रिपशन लिखा और चला आया।

बाहर मीना, मानिक, नरेन्द्र बैठे उसी की राह देख रहे थे।

"वैल ?" मानिक बाबू ने पूछा—"यहाँ के डाक्टर ने तो कहा है कि अंतड़ी का क्षय है।"

प्रेम ने कहा—"मेरी राय इससे भिन्न है, किन्तु पैखाना इत्यादि को भी जाँच करा लूँगा। जरूरी है।"

"क्या डायाग्नोज किया ?" मानिक बाबू ने पूछा, "मैं तो कहता था कि यहाँ के डाक्टर सब बुद्धू होते हैं।"

प्रेम हँस पड़ा—"यह भी तो हो सकता है कि मैं बुद्धू हूँ।"

"लेकिन क्या निदान हुआ ?" नरेन्द्र ने पूछा।

"कल कहूँगा फिर देखकर।" प्रेम अभी सोच रहा था कि उसे पहले डाक्टर से राय कर लेना चाहिये—प्रोफेशनल एटिकेट।

किन्तु अन्त में, प्रेम ने अपने ही निदान पर इलाज शुरू किया, फ्लोटिंग किडनी का।

"इन्हें सिर्फ आराम की जरूरत है और मोटी होने की." उसने कहा, "मोटी हो जायँगी तो दर्द इत्यादि सब ठीक हो जायगा।"

"जो चाहो करो।" मानिक बाबू ने कहा, "मैं तो ले मैन हूँ। मैं क्या समझूँगा इन सब बातों को?"

प्रेम ने माँ को सब समाचार लिख दिया था। साथ ही मीना की शिकायत भी—"माँ को, रोगिणी माँ को, दूसरे के भरोसे छोड़कर वह हरदम तितली-सी नाचती फिरती है। कुछ फिक्र नहीं, सोच नहीं।" उसने लिखा था।

केतकी का उत्तर आया "वह सब-कुछ नहीं है। सुधर जायगी, अभी बच्ची है, खेलने खाने के दिन है।" इत्यादि किन्तु फिर भी, प्रेम न जाने क्यों मीना के प्रति एक उलहना हृदय में पाले था।

एक दिन उसने मीना को कहा भी था कि अब तो थाइसिस का डर नहीं है। वह क्यों नहीं माँ की सेवा करती।

मीना ने उत्तर दिया था—"मेरी सेवा से उन्हें लाभ न होकर हानि की सम्भावना ही अधिक है। फिर जब राधा है ही।"

"राधा फिर भी पराई है"—प्रेम ने कहना चाहा।

"रुपया लेती है सेवा करने के लिए ही न?" मीना ने तुनक कर उत्तर दिया था। "फिर रोगी घर में जाते मुझे उबकाई आने लगती है डाक्टर साहब। मैं तो डाक्टर हूँ नहीं। बीमारी का सौन्दर्य तो आप ही लोग देखते हैं। मुझे सिर्फ

उसकी कटुता, रिक्तता, कुत्सित एवं घृण्य रूप ही दिखाई देता है।"

प्रेम को चुप कर जाना पड़ा था उसके बाद। किन्तु मीना की यह उछृंखलता उसे अखरती थी। बदले में वह स्वयं जाकर मौसी के पास बैठा रहता, मीना के अभाव को पूरा करने की वृथा चेष्टा करता। शकुन्तला टोकती तो, लेकिन प्रसन्न भी होती। वह प्रेम से अपने बचपन की कहानियाँ कहती। केतकी से परिचय, मैत्री, सखीभाव, इत्यादि का वर्णन करती। प्रेम तन्मय होकर सुनता। माँ की चर्चा वह करते नहीं अघाता।

राधा या तो शकुन्तला को पंखा झलती या बैठी-बैठी बुनती रहती, और कभी-कभी वह भी बातचीत में भाग लेती। प्रेम के प्रति अब उसका वह नर्स वाला भाव न रह गया था। वह घरेलू व्यक्ति के रूप में ही प्रेम से बातें करती थी। और प्रेम उसकी सेवापरायणता, कर्तव्यनिष्ठा और गम्भीरता देख कर आश्चर्यान्वित होता था कि उसने नर्सिंग क्यों सीखा, यह पेशा क्यों अपनाया ?

दिन इसी प्रकार बीतते थे। प्रेम ने गर्मी-भर यहीं रहना तै किया था। शकुन्तला मौसी को उसके इलाज से लाभ हो रहा था। केतकी ने भी अनुमति दे दी थी।

नरेन्द्र बगीचे में कुर्सी लगाये बैठा था। किताब गोद में रखी थी, किन्तु पढ़ नहीं रहा था। आँखें हॉली हॉक पर मँडराते भौंरे पर लगी थीं। और मन दूर कहीं भटक रहा था।

दिन-भर की झड़ी के बाद शाम को आसमान साफ हुआ था। धूप निकली थी, किन्तु उसकी गर्मी नहीं मालूम होती थी। बैठे-बैठे नरेन्द्र पश्चिम की ओर झुक रहे सूर्य की ओर दृष्टि-पात कर लेता था। आज वह शिकार भी न खेल सका था। ऐसी बरसात भी किसी काम की जो उसके इस अतिरोचक काम को न होने दे।

अचानक प्रेम ने आकर कहा—"अकेले ही बैठे हैं नरेन्द्र बाबू? खैरियत तो है न?"

नरेन्द्र ने झटके से अपने मन को खींचा। प्रकृतिस्थ होकर उठ खड़ा हुआ। "मन नहीं लग रहा था, इसीलिए चला आया था—एकान्त में।"

"ओह—तब आपके एकान्त-सेवन में विघ्न हुआ, क्षमा करें।" प्रेम लौटने लगा।

"नहीं ! नहीं ! डाक्टर प्रेम । मेरा यह मतलब कदापि नहीं था। आइये, बैठिये।"

"मैं तो आपसे टहलने का अनुरोध करने आया था।"

"चलिये, चला जाय। बैठे-बैठे दिन-भर बीत गया।"

"हाँ, आपका शिकार न हो सका। बन्दूक लेते चलिये—कुछ मिल जायगा।"

नरेन्द्र ने ध्यानपूर्वक प्रेम को देखा, मजाक तो नहीं कर रहा है। किन्तु प्रेम गम्भीर था।

बन्दूक क्या होगी। चलिये, बाजार की ओर चला जाय।"

दोनों चल दिये।

"बाजार कहाँ है, यह तो सिर्फ एक कूचा मात्र है।" प्रेम ने कहा।

"अगर आप बाजार का अर्थ रूप का बाजार करते हैं," नरेन्द्र ने कहा, "तो सचमुच यह बाजार नहीं है।"

"क्यों, क्या बाजार वही होता है? मेरी समझ में तो बाजार के अर्थ होते हैं।"

"बहुत-सी दुकानें, चहल-पहल, रंगीन साड़ियों की फड़-फड़ाहट, नौजवानों के दिलों की छटछटाहट, गाड़ियों की गड़गड़ाहट, यही न?" नरेन्द्र ने वाक्य पूरा किया, "डा० प्रेम! जीवन का एक पहलू वह है और एक यह। जीवन की पूर्णता समझने के लिए दोनों जरूरी हैं।"

"आप तो, देखता हूँ, आज दार्शनिक हो रहे हैं।" प्रेम ने कहा।

"आज ही क्यों? मैं तो हमेशा दार्शनिक हूँ। हमेशा हर चीज का दर्शन नये ढंग से करता हूँ, नये दृष्टिकोण से, नयी चीज देखने के लिए।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि आपका वह नया दृष्टिकोण

कौन-सा है ?" प्रेम ने कैतूहल-पूर्वक पूछा।

"वह दृष्टिकोण ?" नरेन्द्र चलते-चलते रुक गया। "उसे आप जीवन का दृष्टिकोण कह सकते हैं।।"

"जीवन का ?"

"हाँ, जीवन का। लेकिन शायद आप यह भी नहीं जानते हैं कि जीवन है क्या ?"

"प्राणि-विज्ञान के अनुसार...."

"बस, समझ गया। जब जीवन को समझने के लिए आपको प्राणि-विज्ञान का आश्रय लेना पड़ता है तो आप उसे समझ चुके। आप तो गुलाब को देखकर उसके सौन्दर्य से प्रभावित थोड़े ही होंगे। आप लग जायंगे उसे क्लासिफाई करने। जनाब, वह तरीका आपको जीवन से परिचय नहीं करायगा। आप पढ़े-लिखे हैं, मानता हूँ। सफल डाक्टर भी हो सकते हैं, किन्तु जीवित, मुझे सन्देह है।"

"जीवन की परिभाषा आप क्या करते हैं।" प्रेम ने पूछा। नरेन्द्र ने चलना शुरू कर दिया था। एक बाजारी कुत्ते को—जो उसके पास आ दुम हिलाने लगा था—जोर से एक ठोकर जमाते हुए उसने उत्तर दिया—"देखते हैं इस कुत्ते को। आपके प्राण-विज्ञान के अनुसार यह जीवित है, क्योंकि यह खाता है, चलता-फिरता है और अगर मौका पाय, तो प्रजनन भी करता है। यही न है आपकी जीवन की परिभाषा ?"

"हाँ" प्रेम ने सकुचाते हुए कहा।

"हाँ ! यही जीवन है ! तो मौत क्या है ?"

"मर जाना।"

"मेरी समझ से यही तो मौत है ! जीवन !—हुंम ! इस तरह के अस्तित्व को जीवन कहना जीवन का अपमान है। जीवन तो वह फूल है जो कि अस्तित्व के कटीले झाड़-झंखाड़ में खिलता

है। आप अस्तित्व को और जीवन को एक ही समझते हैं, मैं दो—सभी मनुष्यों का अस्तित्व होता है लेकिन उनमें से जीते कितने हैं ?"

"लेकिन नरेन्द्र बाबू ! आप यह क्यों भूल जाते हैं कि आपके जीवन का फूल उसी अस्तित्व के कटीले झाड़-झंखाड़ पर अवलम्बित है ? क्या आप समझते हैं कि वह उससे अलग है ?"

"मेरे लिये हाँ, आप लोग अपने दृष्टिकोण को उन्मुक्त नहीं बना सकते—इसीलिये आप समझते हैं कि अस्तित्व और जीवन—दोनों एक हैं। अस्तित्व होता है उस पौधे की तरह जो एक ही स्थान पर अपने ही सड़े पत्तों को दुबारा खाकर जीता हो। और 'जीवन'—जीवन वह चीज है जो कि क्षणिक होते हुए भी अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है जीवन 'गति' है, अस्तित्व गतिरोध; जीवन के लिये अस्तित्व का त्याग करना होता है, डा० प्रेम ! लेकिन वह त्याग अस्तित्व मिटाकर नहीं बल्कि उसे बढ़ाकर, उसका विकास करके होता है ! इस बारे में तान्त्रिक लोग बड़े समझदार थे।"

"योगो भोगायते।" प्रेम ने हँसकर कहा।

"हाँ, योतो भोगायते ! आप हँसते हैं। लेकिन इस कथन का अर्थ समझे ? आप तो एक पक्ष को ही समझते हैं, कर्मफल त्याग ही सन्यास है। लेकिन, मैं पूछता हूँ कि आपने कर्म-फल का त्याग किया कहाँ ? कब ? त्यागरूपी फल के ही लिये न आपने किया ? कर्म-फल का त्याग करने से ही आपको सुख मिलता है, आप के लिये फल वही सुख हुआ। सुख की प्राप्ति के लिये ही न आप सब काम करते हैं ? सुखमेवलब्ध्वा कुरुते—आपकी श्रुति भी तो कहती है।"

"साथ ही वह यह भी तो कहती है, नरेन्द्र बाबू ! "यद् अल्पं

तद् असुखं....' इसे क्यों भूल जाते हैं ?"

"भूलता मैं हूँ, या आप ? आप अपने जीवन का एक अंश दबा देते हैं। आपका जीवन तब अल्प हुआ या नहीं ? आप ही क्यों, हमेशा से तो यही होता आया है। या तो आप अपने जीवन के आध्यात्मिक अंश को भूल जायँगे और एकदम से स्थूल इन्द्रियवादी हो जायँगे—या, इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप, इन्द्रिय-दमन कर एकदम भाव-वादी बन जायँगे ! या बुद्धि-वादी-फल एक ही होता है। एक ओर आप पाते हैं—अस्तित्व का वीभत्स रूप तो दूसरी ओर आप चाहते हैं अमानुषिक—आप उसे परा-मानुषिक कहते हैं—कल्पनाजन्य सन्तोष, अगर आप को आधुनिक बुद्धि-वाद ने छू लिया है तो आप इन दोनों रूपों को दबा देते हैं और शुद्ध तर्क-सम्मत बुद्धि की प्रधानता मानने लग जाते हैं। इसी को आप जीवन कहते हैं ? ईश्वर की उपासना करने के लिये उसी ईश्वर की दी हुई देह को सुखा देते हैं, उसी के द्वारा हृदय में रोपी गयी वासनाओं को कुत्सित ठहराते हैं और दावा करते हैं ईश्वर की उपासना करने का, ईश्वर भक्त होने का ! यही आपका 'जीवन' है ? या मन को दबाकर सिर्फ पेट-पूजा करना जीवन कहलायगा, या सिर्फ बुद्धि का उसी बुद्धि का जो कि आपके विज्ञान के अनुसार मानव की मानवता है, विकास करके जीवन का पूर्णत्व प्राप्त करना ही आप ठीक समझते हैं ?"

"तो क्या बुद्धि का विकास आपकी समझ से ग़लत है ? क्या आप यह भी अस्वीकार करेंगे कि मानव आज बुद्धि के बल से ही इतना महान है।"

"महान् ! ओफ़ ! उसकी महत्ता क्या है ? वृक्ष की पहचान फल द्वारा होती है। बुद्धिवाद के फल क्या हैं ? सामूहिक विनाश के अस्त्र—तोप, बन्दूक, बम ! बड़े सुन्दर फल हैं ! या

यह रेल-मोटर इत्यादि। मानव को अपने अधीन कर उसे भी एक यंत्र में परिणत कर देने वाले, बड़े ही अच्छे फल हैं।" नरेन्द्र हँस रहा था चुपचाप। "माफ कीजियेगा डा० प्रेम.! आप मेरी बातों से सहमत नहीं होंगे—मैं जानता हूँ। परन्तु अगर आप यह समझते हैं कि आपके लिये मैं अपना ढाँचा ही बदल दूँ तो मैं कहूँगा कि आप गलती कर रहे हैं। मुझसे वह होगा ही नहीं।

"सो कैसे होगा, नरेन्द्र बाबू!" प्रेम ने कहा "लेकिन अगर आप यह उम्मीद करें कि हम भी अपना ढाँचा बदल दें तो सो भी तो कठिन काम है।"

"मैं आप से ढाँचा बदलने के लिये नहीं कहता—यही कहता हूँ कि आप उस ढाँचे को विकृत न करें, आप मनुष्य हैं, मनुष्य से अधिक बनने की चेष्टा क्यों करते हैं? वह चेष्टा आप में कुछ अधिक बढ़ायगी नहीं, आप में से कुछ ले ही लेगी।"

"लेकिन यह तो मानव-स्वभाव है नरेन्द्र बाबू! कि वह हमेशा अपने से अच्छा बनना चाहता है। आदर्श की प्राप्ति के लिए सतत चेष्टा, यही तो उसे प्रेरित करती है उन्नति की ओर।"

जी नहीं! वह उन्नति करता है अधिकाधिक अपनी अभिव्यक्ति करके, उस अभिव्यक्ति का दमन करके नहीं। उस तरह दमन करने से वह भीतर-ही-भीतर सड़ती है, दुर्गन्धि फैलाती है। मनुष्य मेंढ़क की तरह फूल कर बड़ा बनना चाहता है, किन्तु फट जाता है और तब अवशिष्ट रह जाते हैं, उसके टुकड़े वे भी सड़े हुए। मनुष्य मनुष्य है। उससे अधिक समझना गलत है, आत्म-प्रवंचना है और उस आत्म-प्रवंचना का अर्थ होता है जीवन-हीन अस्तित्व या, मेरे विचार में—जीवित मृत्यु।"

"आपके विचार तो एकदम पशुवादी मालूम होते हैं।

क्या आप वास्तव में उन्हें ठीक समझते हैं ?" प्रेम को आश्चर्य हो रहा था, कैसे कोई सिर्फ इन्सान की हैवानियत को इतना महत्व देता है ? हम तो हमेशा अन्दर के पशु का दमन ही उचित समझते हैं।

नरेन्द्र हँस पड़ा, "आप को ताज्जुब होता है डा० प्रेम ? प्राणि-विज्ञान पढ़कर भी आप इस प्रेरणा (Teleology) को मानते हैं। उसका उद्भव दैवी है न।"

प्रेम ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "दैवी न मानते हुये भी वह पाशविक तो नहीं कही जा सकती। बर्गसन के अनुसार इस अन्त:प्रेरणा की अभिव्यक्ति ही तो प्राण है। और प्राण के बिना आपका जीवन पुष्प विकसित कहाँ होगा ?"

"अन्त:प्रेरणा की अभिव्यक्ति"—शब्द तो आडम्बरपूर्ण है : लेकिन उसका अर्थ जब आप एक संकुचित दायरे के अन्दर रख देते हैं—उससे पाशविक प्रेरणाओं को निकाल देते हैं—तो क्या वह वास्तव में आन्तरिक प्रेरणा रह जाती है ? आप जीवन को मान्य परम्परा के अनुकूल बनाने के लिये उसे जीवन ही नहीं रहने देते, कृत्रिम आवरण से उसे ढँक देते हैं। जानते हैं, आग का असली आवरण उसकी राख ही होती है, पत्ते से ढक देने से धुँआ ही उठेगा।

दोनों चुपचाप चलने लगे—अपने-अपने विचार में मग्न।

सूर्य अस्त होने लगा था, बदली फिर घिरने लगी थी, दोनों जने लौट पड़े।

मीना ने लौटते ही दोनों को ध्यानपूर्वक देखा। वह चाय लिये बैठी थी, मन-ही-मन भुनभुना रही थी। किन्तु दोनों के गंभीर चेहरे देखकर पूछ बैठी—"क्या हुआ है ? दोनों जने मानो अभी किसी भयंकर दुर्घटना से बचकर आये हों—चेहरा

गंभीर।" कुछ उत्तर न पाकर झल्ला गई, "क्या मौन धारण किया है ?"

प्रेम ने हँस कर कहा—"नहीं तो, सिर्फ जरा सोचने लग गये थे।"

"सोचने ? यह रद्दी काम आप भी करने लग गये ? मीना ने आँख नचा कर पूछा। "सोचते-सोचते तो जरा पागल हो गया है और, उस पागलपने को क्यों बढ़ाइयेगा। चलिये, चाय में सभी सोच-विचार डुबा दीजिये।"

"चाय न हुई शराब हुई।" नरेन्द्र ने मुँह बिचका कर कहा। पाश्चात्य देशों में शराब का स्थान है क्या तुम उसे चाय से ही पूरा करोगे ? शराब पीने की हिम्मत ही हम में नहीं है। इसी से..."

"बातें रहने दो चाय ठण्डी हुई जा रही है।"

"और तुम्हारा दिमाग गर्म होता जा रहा है" नरेन्द्र ने रोक कर कहा—"यही न ? तो और गर्माने दो। विस्फोट हो जायगा तो अच्छा ही होगा—गन्दगी निकल जायगी।" नरेन्द्र अपने कमरे की ओर चला गया।

मीना क्रोध से भर गई। उसका चेहरा लाल हो गया। "मेरे दिमाग में गन्दगी भरी है न ? अच्छा जनाब !"

प्रेम चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया था।। उसने प्याले में चाय डालते हुए कहा, "जाने दो, आज उन पर फिलासफी का भूत सवार है। जल्दी नहीं उतरेगा।"

"भूत भगाना मैं खूब जानती हूँ।" मीना ने रुष्ट होकर उत्तर दिया। "यह सब भूत और किसी को दिखावें विस्फोट होगा—ऊंह—होने दो विस्फोट ! क्या बातें हैं इनकी। यह नहीं जानते हैं कि मीना के दिमाग में विस्फोट होने का नतीजा क्या निकलेगा ?"

"क्या ?" प्रेम ने पूछा—कुछ कहना उसने जरूरी समझा था। किन्तु मीना ने बात टाल दी। पूछा, "किधर गये थे ?"

"बाजार"

"जाते नदी किनारे, सुन्दर फूल हैं !"

"तुम चलती ही नहीं हो और मुझे कुछ मालूम भी नहीं।"

"चलूँगी कल" मीना अन्यमनस्क-सी हो गई थी।

चाय पीकर प्रेम भी अपने कमरे में चला आया और बैठकर माँ को पत्र लिखने लगा। बत्ती जल गई थी, खिड़की से हवा आ रही थी और बत्ती की लौ कभी-कभी इधर-उधर काँप जाती थी।

प्रेम पेन हाथ में लिये बैठा रह गया। क्या लिखे वह ? उसे आये प्रायः एक मास हो चला था और इस बीच वह यह स्थिर नहीं कर पाया था कि वह क्या करे। क्यों मां ने उसे यहाँ भेजा ? अगर मीना को ही वे वधू रूप में लाना चाहती थीं तो क्यों उन्होंने आदेश नहीं दिया ? क्यों प्रेम को यहाँ भेजा, पसंद करने के लिये। तो क्या वे समझती थीं कि प्रेम कुछ दिनों की जान-पहचान से ही यह जान लेगा कि मीना उसके लायक है या नहीं। किन्तु प्रेम तो समझ ही नहीं पा रहा था कि यह 'पसन्द' कैसे की जाती है क्या देख कर—मीना सुन्दर थी—और सौंदर्य का जो आकर्षण होता है वह उसमें पूरा था। क्या वही जीवन-भर के लिए पर्याप्त था ? उसने तो पढ़ा था कि स्त्री को विधाता भी नहीं समझ सकते मनुष्य की हस्ती ही क्या है। तब प्रेम ही कैसे समझ पाता ?

उसे तो मालूम हो रहा था कि उसका आना इस लिहाज से व्यर्थ ही गया। वह जाकर मां से कह देगा कि उसे कुछ मालूम नहीं। वह जाहिरा तौर से शकुन्तला मौसी का इलाज करने आया था, वही करेगा। इसके अलावा व्यर्थ माथा खराब करने

की जरूरत नहीं। मौसी अच्छी हो जाय, वह चल देगा यहाँ से। मां जो समझे करे।

"डाक्टर बाबू"

प्रेम चौंक पड़ा। सिर घुमाकर देखा उसने—राधा खड़ी है।

"क्या है राधा?" उसने पूछा।

"माँ बुलाती है आपको, चलियेगा?"

"चलो, आता हूँ।" राधा के जाने के बाद भी प्रेम उधर ही देखता रहा।

राधा भी तो सुन्दर है—उसने सोचा। मीना गोरी है राधा सांवली, किन्तु दोनों ही तो आकर्षक हैं। सौंदर्य के लिहाज से, किसे अच्छा ठहराऊँ? सुअलंकृता मीना को या साधारणवेषा राधा को? उसे याद आया किसी कवि का एक पद'—अनलंकृत सौंदर्य ही वास्तविक सौंदर्य है' मीना को भी अलंकार-विहीन देखना चाहिये।

वह उठा! धीरे-धीरे मौसी के कमरे की ओर बढ़ा। दरवाजे से निकलते ही मीना से टकरा गया—"ओह्" उसके मुँह से निकला, मीना का माथा उसके नाक से टकरा गया था। गर्म श्वास उसकी दाढ़ी को छू गया था—वह सिहर उठा।

"चोट तो नहीं लगी?" उसने पूछा।

"आप को ही लगी होगी।" मीना ने उत्तर दिया "आज देखती हूँ, ध्यान में मस्त हैं आप भी मन इधर-उधर भटक रहा है—किसके पांवों तले?" अर्ध अंधकार में मीना की आँखें चमक रही थीं।

"सोच तो तुम्हारी ही बात रहा था, मीना!" प्रेम ने उत्तर दिया।

"सच?" मीना ने प्रेम के कंधों पर हाथ रखकर उसकी आँखों में देखने की चेष्टा की—

"क्या सोच रहे थे—?"

"कि तुम कितनी सुन्दर हो!" मीना हँस पड़ी! उसने हाथों से प्रेम के सिर को पकड़ लिया, धीरे से अपनी ओर झुकाया, प्रेम संकुचित हो उठा, क्या मीना उसे, किन्तु मीना ने हाथ हटा लिये थे "Baby" उसने कहा और भाग गई।

प्रेम खड़ा रह गया खोया-सा—क्या मीना उसे—या क्या उसे स्वयं—वह सोच में भी वाक्य पूरा नहीं कर सका। उसके भारतीय संस्कार विरोध कर रहे थे।

वह जल्दी-जल्दी मौसी के पास चला आया—वहाँ प्रकाश में, मौसी की छाया में उसका संकोच दूर हो गया।

"मैं सत्यनारायण की पूजा करना चाहती हूँ," शकुन्तला कह रही थी।

प्रेम को भेजकर केतकी को सन्तोष नहीं हो रहा था। घर तो सूना सा लगता ही था, किन्तु मन भी सूना-सूना हो रहा था। भावी की आशंका उसे उद्वेलित कर रही थी। कई वर्ष हो गए थे उसने मीना को नहीं देखा था। अब न जाने कैसी हो ? बचपन से ही वह तथा शकुन्तला सखी थीं। एक ही गाँव में घर था ! पड़ोस में मकान, साथ खेलना, कभी-कभी साथ ही खाना सोना भी। किन्तु क्या वह सखी भाव अभी भी वैसा ही रह पाया होगा। पत्र बराबर आते-जाते थे। परन्तु पत्रों के द्वारा हरदम सम्बन्ध को दृढ़ बनाये रखना दुष्कर कार्य था।

उसे बचपन के वे दिन याद आ रहे थे, जब वे दोनों आपस में लड़ जाती थीं। जरा-जरा सी बात के लिए और सब से अधिक उसे याद थी वह रात जब कि वह शकुन्तला के दूल्हे को देख उस पर मोहित हो गई थी। और, इतना ही नहीं उसने शकुन्तला से कह भी दिया था। ईर्षा—दोनों ही ओर से जबरदस्त गलत फहमी उठी थी, कुछ दिन तक दोनों की बातचीत बन्द रही थी। किन्तु शकुन्तला जब बीमार होकर घर आई थी तो वह दूर हो गई थी, तब तक उसकी अपनी शादी हो चुकी

थी, पति के साथ ही उसे पुत्र भी मिला था ! उसने कितने गर्व के साथ अपना वह छः वर्ष का 'पुत्र' शकुन्तला को दिखलाया था। तभी तो दोनों सखियों ने तै किया था कि शकुन, अगर उसके लड़की हुई तो, इसी बालक से व्याहेगी ईश्वर की कृपा से लड़की ही हुई थी।

कई वर्षों से उसने शकुन्तला को नहीं देखा था। किन्तु मीना एक दफे आई थी। ननिहर और वहीं केतकी ने देखा था कि वह उस की पुत्र-वधू होने लायक है। ठीक शकुन्तला से मिलता-जुलता चेहरा वैसा ही नटखटपन, केतकी को बड़ी अच्छी लगी थी वह।

उसने एक लम्बी साँस ली। वह जानती थी कि पराई लड़की चाहे कितनी ही अच्छी लगे अपनी बहू के रूप में वह शत्रु ही बन जाती है। किन्तु अगर लड़का सुखी रहे, तो यह बड़ी बात नहीं

प्रेम का पत्र आज ही आया था। उसने लिखा था मीना का वर्णन और शिकायत। अभी तक उसका बचकुनियाँ स्वभाव नहीं गया था। तभी तो इस तरह को शिकायत लिखता था। अब तो वह स्वयं समझदार था। क्या जीवन-भर माँ के आँचल से बंधा रहेगा? किन्तु इस विचार से केतकी को सुख ही हुआ। कितना मानता था उसे उसका हृदय भर आया। कल्पित प्रेम को हृदय से लगाते हुए उसने धीरे से कहा। "सुखी रहो बेटा"

बाबू विन्ध्येश्वरीसिंह ने उसी समय प्रवेश किया।

"किसका पत्र है ?" उन्होंने पूछा।

"प्रेम का।"

"कब आयगा ?"

"अभी तो कुछ दिन रहेगा वहाँ"

"क्या करना सोचा है ? लिखता है कुछ ? प्रेक्टिस या नौकरी ?"

" मैं तो समझती हूँ कि प्रेक्टिस ही अच्छी होगी। किसी का मुँह तो नहीं जोहेगा।"

विन्ध्येश्वरी बाबू हँस पड़े ! "और मैं तो समझता हूँ कि नौकरी ही अच्छी होगी। निश्चित काम, निश्चित आय, तथा किसी का डर नहीं।"

"डर क्यों नहीं, अफसरों का डर, उनकी खुशामद, हुक्म-बरदारी, प्रेक्टिस में वह सब नहीं—मनमाना काम, मनमानी आय, किसी का मुँह नहीं जोहेगा।

"हजारों का मुँह जोहेगा, नौकरी में तो कुछ का ही लेकिन सवाल हमारी वा तुम्हारी पसन्द का तो है नहीं वह क्या सोचता है ?"

"अभी तो कुछ नहीं लिखा। कहता था कि पढ़ेगा।"

"पढ़ेगा ? और क्या पढ़ेगा ? सारी जिन्दगी पढ़ता ही रहेगा।"

केतकी हँस पड़ी। " सारी जिन्दगी ! अभी तो बच्चा है।"

"हूँ बच्चा है। मैं उसकी उम्र का था, तो बच्चे का बाप था।" विन्ध्येश्वरी बाबू हँस पड़े।

केतकी हँसती हुई बोली "वह ज़माना दूसरा था, यह दूसरा है। खैर, अभी तो वहीं है।"

"हाँ वहीं ! तुम्हारी सखी पर ही हाथ साफ किया जा रहा है, है न ? प्रेक्टिस का प्रारम्भ ! कैसी है अब ?"

"प्रेम तो लिखता है, अच्छी है, फायदा हो रहा है।"

"ठीक है। प्रथम पेशेन्ट है, हौसला बढ़ेगा उसका भी। लेकिन जिस काम के लिए गया था, वह ? मीना पसंद आई ? मुझे तो नहीं लिखेगा कुछ, तुम्हें लिखे तो लिखे।"

"लो, देखो पत्र, पसन्द आई या नहीं इसी से ज्ञात हो जायगा।" केतकी ने प्रेम का पत्र थमा दिया। विन्ध्येश्वरी बाबू पढ़ गये। बोले "पढ़-लिखकर बुद्धू ही रहा। अरे, एक डांट में तो वह ठीक हो जाय, लड़कियों का हौसला ही कितना, सिर चढ़ाओ, सिर चढ़ेगी, ठीक से रखो, ठीक रहेगी।"

"हौसला ही कितना?" केतकी ने स्त्रियों पर आक्षेप सुन सीना तान दिया। "देखोगे हौसला उनका?"

विन्ध्येश्वरी बाबू ने मुस्करा कर कहा "तुम्हें बाद देता हूँ। बाकियों को कहता हूँ। तुम से कौन पार पायेगा? खास करके मेरे-जैसा बूढ़ा?"

"बाल पकने से ही कोई बूढ़ा हो जाता है।" वह बोली। "तुम—तुम तो अभी बच्चे जैसे ही हो। उतनी ही देख-भाल करनी पड़ती है तुम्हारी।"

"नहीं केतकी!" विन्ध्येश्वरी बाबू ने गम्भीर होकर कहा, "मजाक नहीं करता। सचमुच में बुढ़ापा आ गया। बाल पक चले, आँख कमजोर पड़ गई। और क्या रहा?"

उन की आँखों में आँखें गड़ा केतकी ने ध्यानपूर्वक देखा—"क्या आँख में तकलीफ है कुछ?"

"नहीं, लेकिन मालूम होता है कुछ धुंधली हो गई है। जैसे मोतिया बिन्द बन रहा हो।"

"क्या सब असगुन बातें सोचते हो।"

"सच—"

"बस रहो भी। कल बुलाती हूँ डाक्टर को।"

केतकी के चेहरे पर व्यग्रता आ गई थी।

विन्ध्येश्वरी बाबू हँस पड़े। जो हुक्म" उन्होंने कहा।

प्रेम ने सुबह उठकर देखा, सुन्दर प्रभात था। सूर्य निकलने में कुछ ही क्षण की देरी थी और उस के आगमन से लज्जा-मुखी ऊषा के कपोल रंजित हो रहे थे। खिड़की से वह रक्ताभ प्रकाश प्रेम के हृदय में भी उल्लास भर रहा था। वह जल्दी-जल्दी उठा, बाहर निकल गया, फुलवारी में घूमने।

लेकिन मीना उस से भी पहले वहाँ घूम रही थी। नंगे पैर बाल खोले, उस की साड़ी का गुलाबी रंग भी मानो आकाश की समता करने का प्रयास कर रहा हो।

"सुप्रभात!" प्रेम ने कहा।

"मंगल प्रभात," मीना ने हँस कर उत्तर दिया! "सोये नहीं क्या रात?"

"सोया तो खूब"

"जल्दी उठ गये हैं।"

"जग गया था, देखा, प्रभात अत्यन्त सुन्दर है। मन न माना, बाहर निकल ही आया"

"चलियेगा टहलने?"

"चलिये।"

"हाँ चलिये, रात की वर्षा से नदी में पानी आ गया होगा, उधर ही चला जाय।"

प्रेम उत्सुक हो गया, "नहा सकते हैं नदी में ?" उसने पूछा।

"नहाइयेगा ? तैरना जानते हैं न ?"

प्रेम ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

"तब नहा सकते हैं, अगर पानी अधिक न हुआ तो, चलिये खूब रहेगा।"

"नरेन्द्र को भी...."

"जो व्यक्ति इतने सुन्दर प्रभात में सोया रह सकता है वह इस योग्य नहीं कि उसे इस का दर्शन कराया जाय, चलिये मैं भी आती हूँ, कपड़े ले लूँ।"

दोनों शीघ्र नदी की ओर चल दिये, नदी भी वर्षा के पानी से उमड़ी चली आ रही थी। पानी बहुत अधिक नहीं था किन्तु धार काफी थी। फेनिल तरंगें किनारों से टकराकर टूट जातीं और फेन इधर-उधर बिखर जाती।

"कितना सुन्दर सीन है," मीना ने मुस्कुरा कर कहा।

दोनों एक पत्थर पर बैठ गये। अभी तक दृश्य के सौन्दर्य को नष्ट करने के लिए कोई आया नहीं था। वे दोनों ही वहाँ अकेले थे।

पेड़ झूम-झूम कर कभी उन पर छींटे उड़ा देते, कभी पवन जरा तेज झोंके से उन के मुख को सहला देती। मीना के खुले केश उड़-उड़ कर कभी प्रेम के कन्धे पर आ जाते। वह सिहर उठता, उसे अपूर्व आनन्द आ रहा था। उसने मीना की ओर देखा, दोनों की नजरें मिलीं, मीना ने ईषत् संकोच से सिर झुका लिया।

"चलो मीना नहायें" प्रेम ने धीरे से कहा

मीना ने भय-प्रदर्शन करते हुए कहा "ना तुम जाओ। प्रे उठ खड़ा हुआ। कास्टयूम पहनी और झपाक से पानी में कू

पड़ा। इधर-उधर एक चक्कर काट कर बोला—

"पानी अधिक नहीं है। मीना, देखो, भर छाती है

"और धार ?"

"यहाँ तो धार भी अधिक नहीं है।" मीना हिचक रही थी। "आओ न, डरती हो ?"

मीना भी उठ बैठी। बालों को जूड़ा बना कर बांध लिया—धीरे से पानी में पाँव रखा। प्रेम ने आकर उस का हाथ थाम लिया, दोनों आगे बढ़े। पानी धीरे-धीरे उन के शरीर को छिपा रहा था।

अब बस, और आगे नहीं" लेकिन प्रेम आगे बढ़ रहा था, मीना के गले तक पानी आ गया था। धार से उसके पांव उखड़ रहे थे। उसने सिर उठा कर प्रेम की ओर देखा। "अब बह जाऊँगी" उसने धीरे से कहा।

"चलो न, बह जायें हम दोनों।" प्रेम ने भी धीरे से ही उत्तर दिया। मीना के हाथ पर उसकी पकड़ और अधिक हो गई।

अचानक मीना के मुँह से एक हल्की-सी चीख निकली। वह पानी में गोता खा गयी। प्रेम ने हाथ पकड़ रखा था। वह भी झटके से गहरे पानी में जा पड़ा, तैरने लगा। मीना उस से चिपट गयी थी। उसे मीना के शरीर के हर उतार-चढ़ाव का भास हो रहा था। मीना के केश बिखर कर उस पर फैल गये थे, वह तैरता गया तैरता गया

"अब डुबा ही दोगे ?" उस के कान में मीना के शब्द गूँजे। वह मुड़ा किनारे की ओर

कमर तक पानी में आकर मीना खड़ी हो गयी। वह हँस रही थी। प्रेम ने देखा, साड़ी उस के शरीर में चिमट गयी है, हर उभार स्पष्ट दीख रहा है, शरीर का सौन्दर्य मानो कपड़े से छन कर निकल रहा हो।

वह अपने को भूल गया। "चलो फिर..." उसने दांतों के बीच से कहा, 'और नहीं नहीं' कहती मीना फिर गर्दन तक पानी में थी। वह कस कर प्रेम से लिपट गयी—"नहीं, चलो वापस।" प्रेम खड़ा हो गया, उस की सांसे जल्दी-जल्दी चल रही थीं। मीना के नाक से निकले श्वास का गर्म आभास उसे मिल रहा था। मीना के शरीर का स्पर्श उसे उत्तेजित कर रहा था। उसने कहा 'मीना!" उस के दोनों हाथ कस गये। मीना उस के सीने से सटी हुई थी। उसके उन्नत कुचाग्र प्रेम के हृदय को भेद रहे ज्ञात होते थे

"उफ्! छोड़ो! लेकिन मीना के स्वर में रोष नहीं था, मुस्कुराहट थी, "छोड़ो"

"मीना!" प्रेम का मुँह झुका, मीना मुस्करा उठी। "हिम्मत नहीं है तुम में' उसने धीरे से कहा। प्रेम ने और सिर झुकाया लेकिन झट चिकनी मछली-सी मीना उसकी बांहों से निकल गयी और जब तक प्रेम समझे, वह किनारे पर चढ़ चुकी थी।

उसे क्रोध आ गया। एक छलाँग में वह बीच धार में था, नपे हुए हाथ पड़ रहे थे। तैरते-तैरते वह दूर निकल गया।

जब लौटा तो देखा मीना कपड़े बदले बैठी है और नरेन्द्र राधा और मानिक बाबू सभी आ रहे हैं। वह जल उठा। मीना उसे देख मुस्करा उठी।

"गन्दे पानी में नहा रहे हो प्रेम ?" मानिक बाबू ने पूछा।

"बहता पानी निर्मला" मीना ने गुनगुनाया। नरेन्द्र और मानिक हँस पड़े। राधा भी मुस्करा उठी, प्रेम खिसिया गया।

"अब निकलियेगा कि सारा दिन स्नान करने में ही लगाइयेगा ?" मीना ने कहा।

प्रेम ने चुपचाप पानी से निकल, कपड़े पहने। बाकी लोग

टहलते-टहलते जरा दूर बढ़ गये थे। पीछे-पीछे प्रेम भी चला—उसे क्रोध भी आ रहा था और आश्चर्य भी। वह कैसे अपने को भूल गया?

नदी के किनारे जंगली फूल खिल रहे थे गन्धहीन किन्तु देखने में बड़े सुन्दर, पानी की बूँदें पत्तों पर मोती-जैसी छलक रही थीं।

"देखो नरेन्द्र!" मीना ने प्रेम की ओर कनखियों से देखते हुए कहा "कैसा सुन्दर फूल है" झुककर उसने दो-एक तोड़ लिये और कोट के बदले नरेन्द्र की कमीज के बटन होल में लगा दिये। प्रेम कुढ़ गया, राधा ने उसकी इस कुढ़न को ताड़ लिया, वह जरा धीमी पड़ गई प्रेम के साथ।

"डाक्टर बाबू" उसने धीरे से कहा "आप को तैरने का बड़ा शौक है?"

प्रेम ने वक्रदृष्टि से देखा उसे, क्या यह भी कुढ़ाने के लिए ही कह रही है? किन्तु राधा को सरल आँखें, फैली-फैली-सी उस पर निष्कपट भाव से गड़ी हुई थी।

"काश, कि मैं भी तैरना जानती!"

"सीख लो।" राधा चुप रही।

"अच्छा डाक्टर बाबू।" कुछ देर बाद उसने कहना शुरू किया। मीना ने सुनकर सिर घुमा, उसी के स्वर की नकल करके पूछा—"अच्छा डाक्टर बाबू। अगर ज्यादा देर करना हो तो।"

प्रेम चिढ़ गया। "नहीं, चलिये।" उसने तेजी से चलना शुरू किया। नरेन्द्र ठठा कर हँस पड़ा। प्रेम ने हाथ की छड़ी से रास्ते के बगल के फूलों को मारना शुरू किया। पाँच-दस गुच्छे तोड़ डाले उसने।

"हाय! बेचारे..." राधा ने एक गुच्छे को बचाना चाहा,

किन्तु तब तक छड़ी चल चुकी थी, सड़ाक से उस के हाथ पर लगी। प्रेम का क्रोध काफूर हो गया। "तुमने हाथ बढ़ा दिया" उसने कहना चाहा। राधा तमक गई थी। उस की आँखें भर आई थीं। परन्तु उसने हँसकर उत्तर दिया—"मेरी भूल थी।"

"देखूँ—" प्रेम ने हाथ उठाकर देखा। छड़ी का निशान पड़ गया था। उसने लज्जित होकर राधा की ओर देखा। "लगी न कसकर ?"

राधा मुस्करा उठी। लग ही गई, बहुत छड़ियाँ खाई हैं बचपन में, एक और सही।"

प्रेम का हृदय सहानुभूति से भर गया।

"बहुत मार खाई थी बचपन में ?" उसने पूछा "क्यों ?"

"मेरा बचपन, बड़ा दुःख पूर्ण था, डाक्टर बाबू।" राधा काँप उठी। यहीं आकर तो पहले-पहल सुख का अनुभव किया है मैंने"

"तुमने कभी बताया नहीं अपना हाल" प्रेम ने पूछा—

"क्या कीजियेगा सुनकर ?" राधा ने उत्तर दिया। "समझ लीजिये, गरीब थी, गरीबी के सारे दुःख भोग चुकी हूँ।"

सड़क पर पहुँच गये थे वे। चुपचाप उन्होंने कदम बढ़ाये। और बाकी लोगों के पास पहुँच गये।

"बातचीत समाप्त ?" मीना ने धीरे से पूछा। राधा का चेहरा लाल हो गया। प्रेम ने उत्तर नहीं दिया।

चाय पीते समय, नरेन्द्र ने फिर चाय में किस्मत देखी। गंभीर होकर प्रेम की ओर मुड़, उसने कहा—"डेंजर्स एहेड (dangers ahead) !"

"याने ?"

"याने, आगे खतरा है—पानी गहरा है। सँभल जाइये।"

"मैं नहीं समझा आप की बात।"

"आपके समझने के लिए मैंने कहा भी नहीं।" प्रेम चिढ़ कर उठ गया। मीना हँस रही थी।

दिन भर प्रेम अन्य मनस्क रहा। रह-रह कर उसे याद आता था सुबह वाकया। मीना—भीगी धोती पहने। उस से चिमटी मीना—उसे याद आ जाती थी। क्या यही 'प्रेम' है? उसने दिल से पूछा, या सिर्फ सौन्दर्य का आकर्षण? उसने कई दफे मीना की खोज की। किन्तु उसे अकेला न पा सका। वह उसे देख हँस देती या मुस्करा कर भाग जाती। और, उस से बचने के लिए ही शायद वह उस दिन दोपहरिया-भर जाकर शकुन्तला के पास बैठी रही। बहुत दिनों के बाद बेटी का यह परिवर्तन देख उस बेचारी को कितना आनन्द हुआ। यह तो वही जाने, किन्तु प्रेम जल गया!

अब नहीं, उसने तै किया। आज वह फैसला कर लेगा। बातें करेगा मीना से, स्पष्ट कह देगा। उससे।

दिन कटा किसी तरह। शाम को उसने बगीचे से ही खबर भिजवाई मीना को। शकुन्तला के पास बैठी थी वह

"देख तो राधा, क्या कहते हैं?" उसने कहा।

"तू ही जा न?" शकुन्तला ने रोक दिया। "दिन-भर तो बैठी रही है यहाँ जा, टहल भी लेना"

उसे उठना पड़ा।

"क्या है?" उसने प्रेम से पूछा।

"बैठो, तुमसे बातें करनी हैं।"

"अभी?"

"हाँ।" मीना घास पर बैठ गई। प्रेम भी बैठा था। बैठा रहा—क्षणैक चुप रह कर बोला।

"जानती हो, मेरे यहाँ आने का मतलब?"

"हाँ।"

"क्या ?"

"माँ का इलाज।"

"नहीं।" मीना गम्भीर हो गई।

"माँ का इलाज बहाना था। आप आये थे मुझे देखने"

"हाँ।"

"तब ? क्या मैं पसन्द पड़ी ?" मीना ने विरक्त होकर पूछा। प्रेम ने सिर हिलाया—स्वीकृति सूचक।

"तब क्या कीजियेगा अब ?" मीना ने पूछा—

माँ को लिख दूँगा, लिख दूँ ?"

"अपना माँ को आप लिखेंगे, क्या लिखेंगे सो मैं क्या जानूँ ? लेकिन डा० प्रेम ! आपको शरम नहीं आती ?"

"शरम ?" प्रेम ने चकित होकर पूछा।

"आप आये थे मुझे पसन्द करने, क्या मैं बाजारू सौदा हूँ या कोई जानवर ?"

"लेकिन..."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं !" मीना का स्वर आवेष भरा था। आप पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। क्या आप समझते हैं कि आप के ही पसन्द करने से सब-कुछ हो गया ? मेरी पसन्द कुछ भी नहीं ?"

"मैं तो पूछ ही रहा था"

"मैं तो पूछ ही रहा था ! माँ ने कहा, जाओ पसन्द कर आओ आप ने आकर पसन्द कर लिया। क्यों ? क्या गुण देखा आप ने मुझ में ? आपकी पसन्द किस बात पर आधारित है ?" प्रेम चुप रहा।

"बोलते क्यों नहीं ? मैं सुन्दर हूँ ! यही न ? या पढ़ी-लिखी हूँ, या धनी की बेटी हूँ, या और कुछ ?" प्रेम हक्का-बक्का-सा चुप रह गया। क्या कहे, कुछ समझ नहीं पा रहा था।

"या सुबह स्नान करते समय मुझे देखकर आप उन्मत्त हो गये हैं ? ऐसा समझती, तो आपके साथ जाती ही नहीं। दावा करेंगे पश्चिमी सभ्यता का, और क्षण-भर के लिए किसी स्त्री का स्पर्श कर उन्मत्त हो उठे ? विलायत में डान्स में स्त्री पुरुष हमेशा साथ रहते हैं, वे क्यों विचलित नहीं हो जाते ?" मीना का स्वर घृणामिश्रित हो रहा था।

"हम विलायती नहीं हैं।" प्रेम ने कहना चाहा "विलायती नहीं हैं तो क्यों विलायती कोर्टशिप करने आये थे ? क्यों नहीं आँख मूँद कर माँ-बाप की पसन्द की लड़की से शादी कर ली। पसन्द से आपको वास्ता ? जिसे माँ-बाप ने गले मढ़ दिया उसी को पसन्द करना न आपका कर्त्तव्य होता ?"

"किन्तु, प्रेम"

"प्रेम ! आप समझते हैं प्रेम क्या होता है ? प्रेम की दुहाई देते हैं ! जिस दिन वास्तव में प्रेम होगा उस दिन समझियेगा कि प्रेम क्या होता है। फिर सिर्फ आपके प्रेम का अर्थ क्या ? जिसे आप ब्याहेंगे वह भी तो इन्सान होगी, उसके प्रेम का कोई महत्व नहीं ? या वह जबर्दस्ती आप को प्रेम करेगी ? मीना हँसी। तिरस्कार[पूर्ण हँसी थी वह, "आप चुप कर गये ? लिख दीजियेगा माँ को कि मीना इस तरह चिकने वाली लड़की नहीं है। जिस दिन वह देखेगी कि आप वास्तव में मनुष्य हैं, अपना अस्तित्व रखते हैं, स्वतन्त्र हैं—उस दिन वह आप के 'प्रेम को' देख सकती है। जब तक आप माँ के आँचल से बंधे हैं तब तक वह आपको मनुष्य ही नहीं समझ सकती, बच्चा ही समझेगी, उसी तरह करुणा का पात्र।" वह उठ खड़ी हुई। आप ने यहाँ रहकर समय नष्ट किया है, मैं मानती हूँ। माँ का इलाज भी किया, उन्हें आराम भी पहुँचाया। आप की इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। किन्तु इसके मूल्य स्वरूप

आप मेरा शरीर चाहते हैं तो यह सम्भव नहीं। उस तरह की वेश्या वृत्ति मुझसे नहीं होगी।" कुछ देर तक चुप रही वह। प्रेम सिर झुकाए, प्रस्तरमूर्तिवत् बैठा रह गया।

"और कुछ कहियेगा?" मीना ने पूछा कठिनता से प्रेम ने सिर उठा कर कहा—"माफ करो मीना, तुम्हें नाहक कष्ट दिया। "मुझे क्या कष्ट होगा डा० प्रेम? आपके इस आदर को मैं अहोभाग्य न समझ सकी यह मेरा दुर्भाग्य है किन्तु हर स्त्री यह चाहती है कि लोग उसे चाहें उस पर मरें, उस के चरणों तले लोटें। हर नई विजय उसे सुख ही पहुँचाती है, कष्ट नहीं।"

प्रेम तिलमिला उठा। यह अपमान! "मैंने माँ का आदेश निबाहा है, वर्ना आप-जैसी मुखरा स्त्री"

"माँ का आदेश?" मीना ने दोहराया, आप की माँ का आदेश आपको मान्य होगा, मुझे नहीं। मैंने अपनी बुद्धि, विवेक, प्रज्ञा बन्धक नहीं रखा है। माँ के जिम्मे भी नहीं। मेरा उत्तरदायित्व मुझ पर है। समझे?"

"समझा।"

"आइन्दा इस विषय पर बात नहीं हो, इसका ख्याल रखेंगे।" द्रुतपद से वह चली गई। प्रेम जड़ होकर बैठा रहा। उसे पता नहीं लगा कि कब अन्धेरा हो गया।

राधा ने आकर उसे पुकारा, तो वह चौंक पड़ा। राधा समीप आ उस के चेहरे को देख, डर गई।"

"डाक्टर बाबू! उसने पूछा, तबियत कैसी है।"

"ठीक तो है।" प्रेम ने हँसकर कहा—राधा को लगा जैसे पिशाच की हँसी हो।

"चेहरा एकदम कैसा हो गया है। घर के भीतर मीना के खिलखिला कर हँसने की आवाज, "छोड़ो" नरेन्द्र कह रहा था। प्रेम ने जबरदस्ती अपने को सँभाला, उठ खड़ा हुआ।

"कुछ नहीं है राधा, जरा-सा सिर में दर्द है। ठीक हो जायगा।' वह चलने लगा तो लड़खड़ा गया, राधा, सँभाल न लेती तो गिर पड़ता।

'चलिये।"

उस के कमरे तक पहुँचा आई उसे। वह जाते ही बिछौने पर पड़ गया, औंधे मुँह, राधा ने पाँव से जूते खोल दिये, उसने कुछ आपत्ति न की।

"सो जाइये थोड़ी देर," बत्ती धीमी कर राधा चली गई।

कब तक प्रेम पड़ा सोचता रहा, उसे ज्ञान नहीं। उसे होश आया तो उसने देखा कि राधा खिड़की बन्द कर रही है। वर्षा हो रही थी जोर की, भयंकर आँधी थी, बिजली की कड़कड़ाहट से नींद टूटी थी उसकी।

"कितने बजे हैं राधा ?" उसने पूछा।

"एक" राधा ने कहा—अब कैसी तबियत है ?" वह समीप आ गई थी, प्रेम के सिर पर हाथ रखते हुए उसने कहा—"बुखार-सा मालूम होता है।" सचमुच, प्रेम का शरीर जल रहा था। वह फिर लेट गया। राधा ने उसे चादर ओढ़ा दी।

"तुम जाओ, राधा !" उसने धीरे से कहा—

चली जाऊँगी, आप सो रहें।"

"लोग..."

"आप सो रहें, मुझे उस सब की परवाह नहीं।" राधा ने शान्त स्वर में कहा—"माथा दाब दूँ ?" वह बैठ गयी वहीं खटिया पर, और धीरे-धीरे माथा दबाने लगी। प्रेम चुपचाप स्थिर हो, पड़ा रहा। आखें बन्द किये।

बिजली की चमक ने उस से आँखें खुलवा दी, उसने देखा, राधा उसी की ओर देख रही है। करुणा सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से वह बेचैन हो उठा।

"राधा !" उसने कहा—

"सो रहिये आप..."

"राधा ! जानती हो..."

"सब जानती हूँ, आप सो रहिये, व्यर्थ सोच न कीजिये ।"

प्रेम को पता नहीं कब उसकी आँख फिर लग गई ।

सुबह आँख खुली, तो देखा, दिन चढ़ आया था, और उसे बुखार चढ़ा हुआ था।

व्यस्त होकर मानिक बाबू ने आकर देखा—"बहुत परेशान होते थे तुम, फिर कल नदी में नहाए भी, वर्षा का पहला पानी था, औगुन कर गया। खैर, आराम करो, दो चार दिन में छूट जायगा ।

मीना भी आई देखने, दूर से ही बोली—"डाक्टर साहब आप को ही डाक्टर की जरूरत पड़ गई ?"

"लेकिन तुम्हारा इलाज नहीं कराऊंगा।" प्रेम ने कल की बात याद कर कहा—

"मेरे इलाज का तो यह असर हुआ। अब मैं दूर ही रहूँ, सो ही अच्छा, फिर आप जानते भी हैं। मैं रोगी से बड़ा डरती हूँ, माफ करेंगे।" उसका स्वर वेदनामय सहानुभूति पूर्ण था। किन्तु प्रेम पर उलटा ही असर हुआ, वह बोला—मेरी चिन्ता आप न करें। मैं भी स्वयं अपना उत्तरदायी हूँ। मेरे लिए व्यस्त होने की जरूरत नहीं, और वह मुँह फेर कर लेट रहा। मीना कुछ देर खड़ी रही, फिर चल दी।

और प्रेम दीवार पर स्वप्निल चित्र बनाता रहा। माँ को पत्र लिखने के लिए मना कर दिया था उसने, उन्हें क्यों परेशान करें ?

प्रेम को कई दिन खटिया लेनी पड़ी।

मीना तो शायद ही कभी वहाँ आती, आती भी तो हाल चाल पूछ कर ही चली जाती, नरेन्द्र अलबत आकर बैठता। किन्तु उसकी शुश्रुषा का भार पड़ा सब से अधिक राधा पर। शकुन्तला को अब उस की उतनी आवश्यकता नहीं थी। उसे आराम हो रहा था, इसीलिए वह प्रायः प्रेम के ही पास रहती, उसे बातों में भुलाये रखती—हँसाती—

प्रेम को आश्चर्य मालूम होता था कि एक साधारण-सी नर्स इतनी वाक्पटु कैसे हो गई? एक दिन उस ने पूछ ही तो लिया "राधा! तुम ने अपने जीवन का हाल बताया नहीं? नहीं बताओगी? भले घर की होकर तुम ने यह पेशा क्यों अपनाया?"

राधा ने सिर झुकाकर प्रश्न द्वारा ही उत्तर दिया—

"क्या यह पेशा घृणित है?"

"नहीं, पर समाज की दृष्टि में तो हेय है।"

"समाज! किन्तु समाज की परवाह मैं क्यों करूँ? समाज

से मुझे मिला क्या ? उपेक्षा— घृणा-यही न ?" राधा ने किंचित उत्तेजित होकर उत्तर दिया। "आप कहते हैं कि मैं भले घर की हूँ। 'भले घर' से आपका तात्पर्य धनी-मानी प्रतिष्ठित घर से ही होगा क्यों कि आप के समाज की दृष्टि में कोई गरीब भला हो ही नहीं सकता लेकिन मैं उस तरह के भले घर की नहीं हूँ। मैं--मैं—" वह चुप कर गई।

"रुक क्यों गई राधा ? बोलो न !"

"डाक्टर बाबू ! सूखे जख्म न छेड़िये। मैंने स्वेच्छा से यह पेशा अपनाया है। हालाँ कि मेरे लिए दूसरा कोई पेशा था नहीं, जिस में मैं आत्मसम्मान की रक्षा कर सकती। किन्तु फिर भी, मेरे नर्सिंग सीखने का मुख्य कारण यह नहीं है। और तो मैं कुछ कर नहीं सकती, क्या सेवा भी नहीं कर सकूँगी ? अगर मुझ से पीड़ित मानव की कुछ भी सेवा हो सकी तो समझूंगी कि मेरा जीवन व्यर्थ नहीं गया, सेवा ही मेरा धर्म है।

'धर्म !' प्रेम ने कहा, "स्त्री का धर्म तो पति-सेवा ही होता है। शास्त्रों में तो यही लिखा है। और मेरी समझ में भी वही ठीक लगता है।"

राधा का चेहरा लाल हो गया। उस पर उदासी-सी छागई। 'डाक्टर बाबू' उस ने कहा, हर स्त्री चाहती है कि वह माँ बने। यह तो स्वाभाविक है। परन्तु अगर विवाह का अर्थ आप यही लगाते हैं कि वह पति की दासी बन जाय तो इसे मैं नहीं मानती। पुरुष क्यों यह अपेक्षा करता है कि स्त्री उस की सेवा करेगी ? क्या शास्त्र पुरुषों को पत्नी की सेवा का आदेश देते हैं ?

"वह स्त्री से श्रेष्ठ जो हैं।"

"श्रेष्ठ ! किस बात में ? अत्याचार में, हिंसा में, स्वार्थपरता में" राधा ने सिर उठा कर कहा। प्रेम को लगा जैसे मीना की

छाया ही बोल रही हो। क्या सभी आधुनिक स्त्रियाँ यही समझती हैं ?

"तुम्हारी दृष्टि में तो पुरुष बड़े हेय मालूम होते हैं, राधा !" उस ने कहा, "मैं भी शायद पुरुष होने के नाते हेय ही दीखता हूँ ? मैं भी तो तुम्हारी सेवा ग्रहण कर रहा हूँ।"

राधा लजा गई। "डाक्टर बाबू, मैंने आप पर आक्षेप नहीं किया था, मुझे गलत न समझें। आप डाक्टर हैं, रोगी मानव जाति को स्वास्थ्य देने—वाले-देवता आप को तो आदमी से ऊँचा ही समझती हूँ।"

देखता हूँ तुम्हें चिकित्सा के प्रति बड़ी श्रद्धा है, "प्रेम ने कहा—हाँ, मेरी समझ में तो सब से उत्तम प्रोफेशन यही है—रोग के बदले में स्वास्थ्य, पीड़ा के बदले में आराम।"

"लेकिन रुपये के ही लिये तो।"

"यह गलत है। डाक्टर रुपया लेता है, किन्तु क्या आप मुझे बतायेंगे कि स्वास्थ्य का मूल्य कितना है ? चाँदी के कुछ टुकड़ों से तो कहीं अधिक है।"

"तुम मुझे लज्जित करती हो राधा ! मैं तो समझता था कि डाक्टरी में खूब पैसा कमाया जाता है, इसी से मैंने यह पढ़ी भी।"

राधा ने रोककर कहा, "मेरी क्षुद्र बुद्धि में तो यह बात ठीक नहीं। बिना सेवा भाव के अगर कोई डाक्टरी पढ़ता है, सिर्फ पैसा बटोरने के लालच से, तो वह अपना अपमान करता है। मैं मानती हूँ, जब तक फीस वाला प्रश्न रहता है, रुपया मुख्य हो जायेगा ही। किन्तु वह समय भी दूर नहीं है जब कि प्रत्येक डाक्टर इलाज मुफ्त करेगा और सरकार से ही खर्चा पायेगा। चिकित्सा सेवा के ही लिये होनी चाहिये, स्वार्थ से मुक्त, केवल परमार्थ हित ही"

प्रेम विचार-मग्न हो गया, ठीक तो कहती है, उसे भी यह बात अखरती थी। किसी से पीड़ित छोड़ देने की धमकी देकर रुपया लेना, रुपया लेकर ही उस का इलाज करना, रुपया न मिलने पर, क्षमता रहते हुए भी किसी को पीड़ित रहने देना बीभत्स काम है। लेकिन चारा क्या है? डाक्टर खायगा कहाँ से? उस की अपनी जरूरतें कहाँ से पूरी हों? फिर भी, सेवा-भाव के बिना, रुपये को ही मुख्य मानकर चिकित्सा को अपनाना वास्तव में घृणित है। blackmail है।

"आप वैसा नहीं कर सकेंगे डाक्टर बाबू।" राधा कह रही थी। "आशा करती हूं कि आप मानवता की सेवा का ही व्रत लेंगे, सिर्फ निजी स्वार्थ पैसा कमाने की ही पूर्ति नहीं करेंगे" प्रेम ने राधा की ओर देखा। उस की आँखें भीग गई थीं, अनझरे आँसू उन्हें चमकीला बना रहे थे। वह एकाग्र हो उत्सुक दृष्टि से प्रेम की ओर देख रही थी। प्रेम विचलित हो उठा। "ठीक कहती हो राधा! वैसा करना मेरे लिए अत्यन्त शर्म की बात होगी।"

"भगवान का दिया आप के पास सब कुछ है, अगर आप भगवान का विश्वास करके सेवा व्रत अपनायेंगे तो किसी चीज की कमी आप को न होगी, भगवान आपकी रक्षा करेंगे।"

"राधा! तुम भगवान को मानती हो?"

अब की राधा विचलित हो उठी। "नहीं जानती डाक्टर बाबू। मैं तो समझती हूँ कि मानती हूँ, लेकिन शायद वह मेरी प्रवंचना ही हो, भगवान मानना बड़ा कठिन है।"

प्रेम के लिये यह नयी बात थी। वह तो समझता था कि भगवान को मानना सब से सरल कार्य है। line of least resistance और राधा तो ठीक उलटी बात कह रही है।

"मैं नहीं समझा, राधा!" उसने कहा।

"भगवान का अस्तित्व मुँह से स्वीकार करना सरल है" राधा ने कहा किन्तु जीवन के प्रतिक्षण, प्रतिकार्य में उस अस्तित्व को याद रखकर अनुभव करना कठिन है डाक्टर बाबू ! स्थिर, अविचल आस्था बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है" वह उठ खड़ी हुई, 'आप आराम करें' उसने कहा और शीघ्रता से चली गई।

प्रेम पड़ा-पड़ा उसी की बातें सोचता रहा। आज वह अनुभव कर रहा था अपने जीवन की लक्ष्यहीनता का, उसे बोध हो रहा था कि उसे बहुत कुछ सीखना है। पढ़ लिख कर भी वह बुद्धू ही रहा।

जब राधा फिर आई तो उस ने फिर वही प्रसंग छेड़ा, "तुम ने ठीक कहा, राधा, अगर मनुष्य जीवन में सुख-शान्ति, पाना चाहता है तो उसे भगवान में निश्चल आस्था रखनी ही होगी, सेवा का व्रत अपनाना ही होगा, नर की सेवा ही तो नारायण के प्रति भक्ति का प्रतीक है" उसने कहा।

"सुख और शान्ति !" राधा बोली "लेकिन वे हैं क्या ? सुख कहते हैं तृप्ति को, शान्ति अकर्मण्यता को, किन्तु जीवन तो इन दोनों से भिन्न है डाक्टर बाबू, जीवन परिवर्तन है, सतत कर्म और उस की प्रेरणा है, असीम पिपासा, तृप्ति से तो मृत्यु हो जायेगी, जीवन में सुख और शान्ति के लिये स्थान कहाँ ? जीवन में अगर संतोष ही मिल जाय, यह विश्वास कि हम अपना कर्तव्य करते रहे हैं तो समझिये कि जीवन सफल हो गया।"

राधा के ज्ञान को देख प्रेम दंग रह गया, "तुम ने यह सब कहाँ सीखा, राधा ? माँ से ? तब तो तुम्हारी माँ बड़ी पण्डिता थीं"—

राधा सिहर उठी।

'माँ ? मेरी माँ नहीं हैं' उस की आँखों में आँसू भर आये। जिसे माँ कहती थी वह एक दम नीतिशून्या, स्वार्थिनी क्रूरहृदया स्त्री थी" उस ने बात बदलने के लिये थर्मामीटर निकाला" देखूँ कितना टेम्परेचर है ?"

"नहीं है ज्वर" प्रेम ने नब्ज देखते हुए कहा।

"धन्यवाद है भगवान को—"

"और तुम्हें।" प्रेम ने जोड़ दिया। राधा ने एक विचित्र ढंग से उस की ओर देखा ! "मुझे ? किन्तु कर्तव्य करने के लिए तो धन्यवाद नहीं मिलना चाहिए।"

"कर्तव्य कैसा।"

"नौकर हूँ, जिस की सेवा करने की आज्ञा होगी, करूँगी।"

"अन्याय करती हो राधा ! मैंने कभी तुम्हें नौकर समझा है ? आज तुम ने मुझे वह उपदेश दिया है जो कि मैं आजीवन नहीं भूल सकता। उस के लिए भी तुम्हें अपनी कृतज्ञता प्रगट करना जरूरी है। तुम्हें कुछ देने की क्षमता मुझ में नहीं है। स्वास्थ्य का मूल्य सोने-चाँदी से नहीं चुकाया जा सकता, किन्तु श्रद्धाञ्जलि के रूप में स्वीकार करो।" प्रेम ने कहते-कहते हाथ से माँ की दी हुई अंगूठी निकाल ली थी। हाथ बढ़ा उस ने राधा का हाथ पकड़ लिया और अंगूठी उसे पहिना दी।

राधा का चेहरा लाल हो गया। किन्तु तुरत पीला पड़ गया। उस ने अत्यन्त करुण दृष्टि प्रेम पर डाली। "यह क्या" उसने अस्फुट स्वर में कहा, प्रेम अपने भावातिरेक पर लज्जित हो रहा था। डरता था कि कहीं राधा बिगड़ कर अंगूठी लौटा न दे। उसने धीरे से कहा— "शिष्य की भेंट, तुम ने मेरी आँखें खोल दी हैं आज, सेवा-व्रत का उपदेश देकर।"

"इस की कोई जरूरत नहीं। आप रखें।" राधा ने अंगूठी उतार ली। प्रेम की ओर बढ़ाते हुए बोली—

"राधा!" मेरी इतनी-सी बात न रखोगी?" प्रेम ने पूछा। राधा का हाथ रुक गया। वह ठगी सी खड़ी रह गई। प्रेम ने फिर अंगूठी उसे पहना दी, और लेट गया। आँखें बन्द कर ली। राधा बड़ी देर वहीं, वैसे ही खड़ी रह गई। फिर धीरे-धीरे चली गई, अंगूठी पहने ही...

वर्षा के बाद धूप सुखद प्रतीत होते हुए भी कितनी कठोर गर्मी ला सकती है यह तो बहती हुई पसीने की धार ही कह सकती है। किन्तु उसके बाद का सूर्यास्त सचमुच सुन्दर प्रतीत होता है।

खुली खिड़की के सामने बैठा प्रेम बादलों के बदलते रंगों को देखकर मस्त हो रहा था। आकाश की सुन्दरता उसे बरबस कलाकार बना रही थी। उस का ज्वर छूट गया था। किन्तु कमजोरी के कारण वह बाहर जा नहीं सका था। आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे ही वह खुली हवा का आनन्द ले रहा था। तथा अस्तंगत सूर्य को दिये जाने वाले वर्णछटा-पूर्ण मानपत्र को देख रहा था।

आसपास से लाली भरी रोशनी कमरे को भी धीरे-धीरे लाल आभा दे रही थी। बादल रक्त ज्वालामय हो रहे थे। पीड़ा से लाल या लज्जा से ? या कर्तव्य करने के बाद के श्रम से ? प्रेम सोचता था कि शायद तीनों ही कारण हों।

बहुत देर से बैठा रहा था वह। आज उसे अपना अकेलापन बोध हो रहा था। शकुन्तला मौसी को फिर एक दौरा हो

गया था दर्द का। राधा उधर ही व्यस्त थी, नरेन्द्र तथा मीना टहलने निकल गये थे। और प्रेम, अपने विचारों के साथ बैठा यह रक्तिम, स्वर्णिम सन्ध्या काटने की चेष्टा कर रहा था।

उस का आना व्यर्थ ही गया। मीना को ज्यों-ज्यों वह देखता था उस के मन में उस के प्रति वितृष्णा ही बढ़ती थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि इसका कारण क्या है। उस की आन्तरिक रूढ़िवादिता या बुद्धि-जनित परीक्षा का परिणाम या मीना से प्राप्त उपेक्षा? उसे ज्ञात था कि पढ़-लिखकर भी वह बहुत ज्यादा अंश तक रूढ़िवादी था। उन रूढ़ियों के औचित्य-अनौचित्य के ऊपर उसने कभी विचार भी नहीं किया था। मीना ने इन्हीं रूढियों के ऊपर आघात किया था। इतना ही नहीं, प्रेम को मालूम हो रहा था, जैसे मीना ने उस की नारी के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा को भी हिला दिया हो। अभी तक उसने एक ही नारी को समीप से देख पाया था, वह थी उस की माँ। और माँ को उसने स्नेह, धर्म, रूढि की जीती-जागती प्रतिमा पाया था। नारी के सभी आदर्श प्रेम ने माँ को देख कर बनाये थे। उस की समझ में वह नारी ही श्रद्धेय थी जो कि उस की माँ के समान हो। और इस हिसाब से मीना बहुत नीचे थी। कहाँ माँ रोज तुलसी के नीचे दिया जला कर मत्था टेकती थी, कहाँ मीना इस प्रथा को पुरुषों के आधिपत्य और स्त्रियों के दासत्व का प्रतीक मानती थी। माँ कभी धार्मिक व्यापारों के प्रति अविश्वास नहीं प्रगट करती थी। मीना उन्हें कल्पना कहकर ठुकरा देती थी, माँ समाजिक रूढ़ियों के अन्दर रहती हुई उन का आदर करती थी, मीना उन्हें पुराने ढकोसले कह कर खिल्ली उड़ाती थी। प्रेम सोच रहा था कि इस दशा में वह क्या करे? मीना के तथा उस के आदर्श ही भिन्न थे। किन्तु मीना के आदर्श थे क्या?

बहुत सोचकर भी प्रेम यह तै नहीं कर पाया कि वे क्या थे। यह तो स्पष्ट था कि वे प्राचीन धार्मिक नहीं थे। किन्तु उस धर्म-भावना को मिटाकर मीना ने बदले में क्या वहाँ स्थापित किया था, यह प्रेम नहीं जान पाया था। उच्छृंखलता, जीवन की कठिनाइयों से भागना, असहाय के प्रति घृणा—यह तो वह देख रहा था—अहंभाव की पराकाष्ठा—स्वयं की रक्षा के लिए माँ तक के समीप नहीं जाती थी वह। प्रेम को यह अस्वाभाविक ज्ञात होता था।

किन्तु प्रायः सभी आधुनिक पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ऐसी ही होती थीं। पति परायणा स्त्री मिले, तो उसे अनपढ़ लड़की से ही विवाह करना उपयुक्त होगा। किन्तु अनपढ़ के साथ जीवन गुजर करना—प्रेम के शरीर में हलका-सा कम्पन दौड़ गया।

तब? वह चाहता था पढ़ी-लिखी, किन्तु पतिपरायणा, सोने की लता, किन्तु सुगन्धित, वह चाहता था दासी, सखी, और मंत्री—सब एक में; ऐसी स्त्री जो कि माँ को भी पसन्द हो और उसे भी। वह समझता था कि अक्सर सास और बहू में नहीं बनती है। उसका कारण होता है किन्तु फिर भी वह झगड़ा बेचारे पुत्र या पति को लेकर होता है, आन्तरिक गुणों के पार्थक्य के कारण नहीं। और प्रेम यह सोच भी नहीं सकता था कि माँ से उसकी स्त्री लड़ने का साहस करे।

किन्तु क्या सभी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं। क्या उन में गांभीर्य का एकदम अभाव है? राधा ही को देखो, पढ़ी-लिखी है, स्वतन्त्र है, कमाती है खाती है, किन्तु फिर भी धार्मिक प्रवृत्तियाँ हैं, विनयशीला है, स्नेहमयी है, सेवा परायणा है किन्तु वह तो रुपये लेती है इन्हीं बातों के, लेकिन क्या सिर्फ रुपये से ही इतना आदरपन खरीदा जा सकता है? नर्सें प्रेम ने कई देखी थीं किन्तु राधा तो एकदम बेटी की तरह शकुन्तला

की सेवा करती थी। क्या मीना कभी वैसा कर सकती? और प्रेम की ही सेवा—राधा ने उसे यह बोध भी नहीं होने दिया कि वह घर में नहीं है। मीना क्या एक घण्टा भी उस के पास न बैठ सकती थी?

क्या ही अच्छा होता कि राधा ही शकुन्तला की लड़की होती—यह विचार आते ही प्रेम चौंका। क्या से क्या सोचने लगा था वह। किन्तु विचार ने एक दफे सिर उठाया तो फिर दबने का नाम नहीं लिया। लाख चेष्टा करने पर भी उस के दिमाग में यह बात चक्कर काटती ही रही। राधा को उस की माँ भी जरूर पसन्द करती—अगर–लेकिन अगर क्यों? क्या यह जरूरी है कि किसी को उस के माँ-बाप के कारण ही पसन्द किया जाय? क्या उस के स्वजात गुण ही पर्याप्त नहीं? किन्तु समाज?

प्रेम जानता था कि विवाह समाज के लिए, समाज के विधानों से ही होता है। विवाह शब्द ही समाज का द्योतक है। तब समाज के विरुद्ध विवाह कैसे होगा? किन्तु राधा ने क्या कहा था? आदर्श ही जीवन है—आदर्श के लिए सब-कुछ छोड़ा जा सकता है और डाक्टर के जीवन का आदर्श होना चाहिये—सेवा। राधा ने ही न प्रेम की आँखें खोली थीं। सेवा, सहानुभूतिपूर्ण चिकित्सा ही तो डाक्टर की सफलता का कारण होता है, उस की इज्जत का मूल। और राधा ने ही यह बात कही थी। काश, कि वह बात मीना के मुँह से निकलती!

प्रेम ने जबर्दस्ती अपना ध्यान आकाश के बदलते रंगों की ओर फेंका। उसे लग रहा था कि वह मीना के प्रति विश्वास-घात कर रहा है, उस मीना के प्रति जिसका काँपता-सिहरता कोमल शरीर उसकी बांहों में बँध गया था किन्तु कितनी फॉवर्ड (Forwrd) थी मीना। क्या वह दूसरों को भी इसी तरह अपना शरीर छूने देती होगी? उस दिन उस के चेहरे पर लज्जा का, रोष का भाव

तो जरा भी न था, था सिर्फ उल्लास, हर्ष, क्या कहा था उसने ? सभी स्त्रियाँ चाहती हैं कि सभी पुरुष उन के चरणों पर लोटें। छिः, कितना क्षुद्र विचार था यह, क्या राधा भी—फिर राधा ? प्रेम विचलित हो उठा, उसने आँखें बन्द कर लीं—क्यों राधा उस के दिमाग पर अपनी छाप छोड़ गई ? क्यों ? क्यों वह इतनी दुर्बलता दिखा रहा है ? वह आया था मीना को देखने—पसन्द करने—तो क्या उसे जबर्दस्ती पसन्द करना होगा ? नहीं।

दबे पाँव राधा ने कमरे में प्रवेश किया—पथ्य लेकर। प्रेम को ज्ञात नहीं कि कब तक वह खड़ी रही।

"डाक्टर बाबू !"

प्रेम चौंक उठा। राधा की बड़ी-बड़ी आँखें उस पर गड़ी हुई थीं। वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी।

"तुम क्यों आई ?" प्रेम कह बैठा।

"पथ्य—"

"नहीं—" कहते-कहते वह लजा गया। क्या समझी होगी वह मन में, इस रूढ व्यवहार से। किन्तु राधा शान्त खड़ी रही।

"खा लीजिए, फिर लेट रहिये," उसने कहा, प्रेम धीरे से उठा, राधा ने हाथ से सहारा देते हुए उसे बिछौने तक पहुँचा दिया। हालांकि सहारे की जरूरत नहीं थी।

सहसा बाहर किसी की पग-ध्वनि सुनाई दी, मीना कमरे में आई। उसने देखा—राधा प्रेम का हाथ थामे बिछौने के पास खड़ी है। अन्धकार घिर आया था, प्रेम बिछौने पर बैठ गया।

"ओह—अन्धेरे में यह एकान्त बातचीत ! मैंने व्याघात पहुँचाया, क्षमा करेंगे—" तिक्ततापूर्ण शब्द सुनकर प्रेम को

धक्का लगा किन्तु उस के मुँह खोलने के पहले ही मीना चली गई थी।

राधा सिहर उठी थी। फिर पत्थर की तरह खड़ी रह गई। अन्धकार में प्रेम नहीं देख पाया उसके चेहरे का लाल होना फिर पीला पड़ना और आँखों का गीला हो जाना किन्तु मीना का यह अन्याय था—अपमानजनक अन्याय।

राधा ने निश्वास फेंका, फिर संयत स्वर में ही कहा—'छोड़िये' बत्ती जला दूँ, प्रेम को तब पता चला कि वह अभी भी राधा का हाथ थामे है। उसने घबरा कर हाथ छोड़ दिया।

बत्ती जलने पर प्रेम ने देखा, राधा शान्त है।

"राधा !" उसने कुछ कहना चाहा, किन्तु शब्द ही नहीं मिलते थे उसे।

"आप बुरा न माने, डाक्टर बाबू" उसने कहा।

"लेकिन तुम —"

"मैं—मैं गरीब हूँ, नौकर हूँ, मुझे सुनना ही होगा।"

"हरगिज नहीं, क्या गरीबों की इज्जत नहीं ?" प्रेम ने गुस्से से कहा—"मैं बात करूँगा मीना से।"

मैं विनती करती हूँ, आप इसे भूल ही जायँ," राधा ने धीरे से कहा— "मेरा कुछ बिगड़ा थोड़े है ? बात बढ़ेगी तो।

"तो क्या ?" प्रेम ने पूछा—

"डाक्टर बाबू ! ऐसे घर को नौकरी फिर नहीं मिलेगी। माँ को छोड़कर कहाँ जाउँगी ?" राधा की आँखें भर आईं। प्रेम ने देखा, चुपचाप कटोरा लिया और दूध पी गया। बिना एक शब्द बोले लेट गया।

पास के कमरे से मीना और नरेन्द्र के खिलखिला कर हँसने की आवाज आई।

राधा बाहर निकल गई।

उस दिन से, प्रेम पर एक तरह से पहरा-सा पड़ने लगा।

मीना दिन में उसे बीस दफे देख जाती, वही मीना जो पहले दिन-भर में एक दफे उसे देखना भूल जाती थी। प्रेम क्रोध से फूल उठा। इतना अविश्वास? इतना ओछापन, उसके मन में मीना के प्रति पूर्ण विराग हो गया। अगर मीना यही व्यवहार पहले करती, तो उसे कितना सुख होता, किन्तु ईर्ष्या, अविश्वास से प्रेरित होकर यह सेवा-भावना, इसे वह स्वीकार नहीं कर सकता था।

किन्तु मीना के चेहरे से ईर्ष्या या अविश्वास नहीं टपकता था। वह बड़े यत्न से प्रेम की जरूरत का ख्याल रखती, बड़े आदर से उस से बातें करती, या बैठी-बैठी उसे अखबार ही पढ़कर सुनाती।

राधा अब प्रेम से दूर रहती थी, शकुन्तला को उस की जरूरत थी, इसी बहाने से। किन्तु प्रेम का हृदय बरबस उस की ओर खिंचता जाता था। उसी के कारण न उस का अपमान हुआ था?

एक दिन जब प्रेम चलने-फिरने लगा था, वह बगीचे में

बैठा था। नरेन्द्र तथा मानिक बाबू भी वहीं बैठे थे, आपस में बातें करते हुए। बदली छाई थी, परन्तु गर्मी लग ही रही थी, प्रेम अनमना-सा होकर बैठा था, बातचीत में दिलचस्पी नहीं थी उसे।

सहसा मानिक बाबू ने पूछा उससे "प्रेम, क्या करने का निश्चय किया है। नौकरी, या प्रेक्टिस ?"

"प्रेक्टिस।"

"आई० एम० एस० में नौकरी करो, मिल भी जायगी।

"जी नहीं, मैंने ठीक कर लिया है कि प्रेक्टिस ही करूँगा, सो भी देहात में, जहाँ तक बन सके उन लोगों की भलाई के लिए जिन्हें चिकित्सा कराना बड़ा कठिन काम मालूम होता है।

नरेन्द्र ने मुस्कराकर प्रेम की ओर देखा। "देखता हूँ आपके विचार एक दम बदल गए हैं।"

हाँ, मैंने सेवा-व्रत लेने का ही विचार किया है। मानव-सेवा रुपये की सेवा नहीं, प्रेम ने संक्षेप में कहा।

"ठीक है, आदर्श जीवन।" नरेन्द्र हँस पड़ा, प्रेम चिढ़ गया। उसने समझा कि उस के आदर्श की हँसी उड़ाई जा रही है।

"और आपने नरेन्द्र बाबू !"

मानिक बाबू ने भी कहा—हाँ नरेन्द्र तुम क्या करने इरादा किये हो ? तुम्हें भी तो तै कर लेना चाहिये। बड़े हुए, घर सँभालो, शादी ब्याह करो, कब तक उद्देश्यहीन घूमोगे ?"

"मैंने ?" नरेन्द्र ने जरा सोचकर उत्तर दिया। मैंने तो कोई प्रोफेशन सीखा नहीं, नौकरी ही करनी पड़ेगी, कोई मिल जाय तो। दिला न दीजिये ?" 'भई, मैं तो सरकारी नौकर हूँ नहीं, हाँ, मेरे कारखाने में कहो तो इन्तजाम कर दूँ, मानिक बाबू ने हँसकर कहा—

"बीड़ा बनाना, मुझ से होगा वह सब, मुँह बिचकाकर नरेन्द्र ने कहा —

"मैं तो कहता हूँ बिजनेस करो, नौकरी-नौकरी की उम्मीद न करो, बिजनेस करो, आराम से खाओ पीओ। जमीन जायदाद भी तो देखनी है।"

जमीन कौन सी ज्यादा है, सब तो मैंने बटाई पर दे दी, उस झंझट में मैं नहीं पड़ना चाहता। हाँ, बिजनेस अच्छा हो सकता है, पर उस में भी झंझट ही होगा। मुझे आता नहीं कुछ भी, क्या ही अच्छा होता कि मैं भी डाक्टर होता, खूब कमाता, खूब खर्च करता, या कोई भी काम सीखा होता, अब तो बस यों ही अवारागर्दी करते जिन्दगी बीत जाय।"

"क्यों क्या शादी करने का विचार नहीं है?" प्रेम ने पूछा।

"कर सकता हूँ, अगर कोई लड़की मुझ-से निखट्टू को पसन्द कर ले।" ईषत् ईर्षा तथा द्वेष के स्वर में ही प्रेम ने कहा — "मीना" नरेन्द्र की दृष्टि देखकर वह चुप कर गया। लजा भी गया। कुछ देर चुप रहकर नरेन्द्र ने गम्भीर स्वर में कहा—"मीना को मैं बहन समझता हूँ। डा० प्रेम।" प्रेम कट गया। मानिक बाबू भी हैरान-से इस बातचीत को सुन रहे थे। वे समझ भी न पाये कि क्या-से-क्या हो गया है। बातचीत का सिलसिला टूट गया। तीनों चुप बैठे रह गये।

प्रेम को बड़ी लज्जा आ रही थी। मानिक बाबू ने क्या सोचा होगा? क्या समझा होगा? नरेन्द्र भी उसे कितना क्षुद्र समझता होगा। और मीना सुनेगी तो क्या कहेगी? वह वहाँ बैठा न रह सका। उठ गया।

मानिक बाबू भी चले गये। नरेन्द्र बैठा रह गया अकेले ही। ध्यानमग्न! कब बूँदें पड़ने लगीं इस का उसे ध्यान ही न रहा। मीना की आवाज सुन वह चौंक उठा, शरीर को ठीक वैसे ही

झाड़ा जैसे कुत्ता झाड़ता है—और भीतर चला गया।

"क्या मुँह बनाये हो?" मीना ने पूछा, "हुआ क्या?"

"कुछ नहीं मीना, तंग न करो।" संक्षिप्त-सा उत्तर पाकर मीना चिढ़ गई। धम-धम करती वह चली गई। नरेन्द्र जाकर अपने कमरे में बैठ गया। प्रेम के एक ही शब्द ने उसे आघात पहुँचा दिया था। उफ! उसने सोचा भी न था कि उसके व्यवहार का यह अर्थ लगाया जायगा और उसी के द्वारा जो मीना के लिए चुना गया था! उसने निश्चय किया कि वह यहाँ से चल देगा। मीना नाराज होगी, लेकिन वह उसे समझा देगा।

लेकिन उसके लिए स्थान ही कहाँ था, कहाँ जायगा वह घर छोड़कर? अपने घर? वहाँ का एकाकीपन क्या उसे रुचेगा? सूना घर क्या वह भी घर होता है? बिन घरनी घर भूत का डेरा...टेढ़ी-सी हँसी हँसकर नरेन्द्र ने सोचा—घरनी कर ही लेगा। लेकिन कौन?

वह सोचता ही रहा। अपने जीवन में उसने जितनी लड़कियों को देखा था सभी को उसने मन में जाँचा। किन्तु वे उसे जँची नहीं। वह ध्यान में बैठा रह गया। कब खाने का समय हुआ, इसकी याद भी न रही। वह प्रेम से भी अलग रहना चाहता था।

उसे बुलाने आई राधा। मीना ने चिढ़कर मान किया था। "मुझसे मुँह फुलाये बैठे हैं, तुम्हीं बुला ला।" उसने राधा से कहा था।

राधा गई तो उसने नरेन्द्र को ध्यानमग्न पाया। किन्तु राधा को देख वह जग उठा। ठीक तो, वह राधा से ही विवाह करेगा। जैसे वह अकेला, वैसे राधा भी—यह विचार आते ही वह खुश हो उठा।

"बैठो राधा !" उसने उल्लसित होकर कहा, तुमसे एक बात कहनी है।"

राधा कुर्सी के सहारे खड़ी रही।

"मीना दीदी खाने को बुला रही हैं।" उसने कहा।

"बुलाने दो, चलता हूँ। पहले यह बताओ कि तुम्हारा गार्जियन कौन है ?" अस्वाभाविक प्रश्न सुनकर राधा घबड़ा गई।

"क्या कीजियेगा पूछकर ?"

"तुम बताओ न ?" नरेन्द्र ने दोहराया।

"कोई नहीं।"

"माँ, बाप, भाई ?"

"सब मर चुके हैं—" राधा का चेहरा लाल हो गया था।

"तब, किसने तुम्हें पाला-पोसा ? कोई तो होगा ?"

"समझ लीजिये, कोई नहीं है।"

"तब तुम से ही बात करनी होगी ? खैर, एक बात बताओगी ?"

"पूछिये।" राधा इस लम्बी-चौड़ी भूमिका को सुनकर घबड़ा-सी गई थी। लेकिन उत्सुक भी हो गई थी।

"तुम विवाह करोगी ?"

यह कैसा परिहास है ? राधा चिढ़ गई। उसने उत्तर नहीं दिया। किन्तु चेहरे से उसके भाव पढ़कर नरेन्द्र ने फिर कहा—

"मजाक नहीं करता, राधा। एकदम सीरियसली पूछता हूँ, मुझसे विवाह करोगी ?"

राधा का चेहरा लाल हो गया था। नरेन्द्र ने आज देखा—राधा सुन्दर थी। वह नेत्र फाड़कर इस अपूर्व सौन्दर्य को देखता रह गया।

"यह क्या कहते हैं आप ? मैं गरीब हूँ, इसलिए मेरा अपमान करते हैं ?" राधा का स्वर क्रोध से काँप रहा था।

"अपमान ? विवाह के लिए कहना क्या अपमान करना है। इसीलिए पूछता था, गार्जियन से ही बात करता। लेकिन जब तुम अकेली हो तब तुम्हीं से कहनी पड़ी।"

राधा जाने को उद्यत हुई। "ठहरो, मेरी बात का उत्तर देती जाओ।" नरेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"छोड़िये मुझे।" राधा काँप रही थी क्रोध से, लज्जा से।

"मेरी बात का उत्तर ?" नरेन्द्र का चेहरा एकदम उसके समीप आ गया था। हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए राधा ने उत्तर दिया—"नहीं।"

"क्यों, क्या मैं पसन्द नहीं ?"

"नहीं, छोड़ दीजिये हाथ।"

"क्यों ? क्या मैं—" बात अभी पूरी भी न हुई थी कि प्रेम ने प्रवेश किया। एक ही दृष्टि में उसने देखा—राधा हाथ छुड़ाने की चेष्टा में विकल, नरेन्द्र उन्मत्त-सा उसे पकड़े हुए। "छोड़ दो !" प्रेम का स्वर भीषण था। नरेन्द्र ने हाथ छोड़ दिया। राधा ने एक दृष्टि प्रेम पर डाली—कृतज्ञता, लज्जा, अनुनय, क्षमा—क्या-क्या उसमें नहीं था। प्रेम ने धीरे-से कहा—"तुम जाओ राधा !" राधा चली गई। प्रेम तथा नरेन्द्र दोनों एक-दूसरे पर दृष्टि गड़ाये खड़े थे, मानो दो जानवर हों। प्रेम ने ही पहले मौन भंग किया। आवाज को संयत रखने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा, "वेल ?"

नरेन्द्र ने भी उतना ही संक्षिप्त उत्तर दिया, "वेल।"

"इसके माने ?" प्रेम की आँखें जलने लगीं। क्रोध से वह काँपने लगा था।

"इसके माने—आप पूछने वाले कौन हैं ?"

"मैं, मैं—"

"हाँ, आप।"

"मैं—इस समय राधा का गार्जियन हूँ।" एक साँस में प्रेम कह गया।

"गार्जियन? क्या खूब।" नरेन्द्र का स्वर सुन प्रेम तिल-मिला उठा, "हाँ गार्जियन—और अगर वह स्वीकार करे तो—?" वाक्य उसने अधूरा ही छोड़ दिया।

"क्या खूब?" नरेन्द्र ने फिर कहा।

"क्या खूब?" प्रेम ने दोहराया। "शर्म नहीं आती है इस बेहया हरकत पर? और कहते हैं क्या खूब? फिलासफी तो छाँटते हैं जैसे कोई ऋषि-महर्षि हों, और हरकतें करते हैं छिछोरी-सी; बनते हैं सभ्य और व्यवहार बर्बर-सा। डूब मरने को जगह नहीं मिलती?"

नरेन्द्र एक छोटी-सी हँसी हँसा—"आप अपनी तो कहें? आये थे एक से कोर्टशिप करने। और गार्जियन बन बैठे दूसरी के? वह भी जाति-कुलहीना नर्स के? यही सब पढ़े थे आप कालेज में? मुझे दोष क्या दीजियेगा, अपने को देखिये।"

"बेशर्म..." कहते-कहते प्रेम कमरे से निकल गया। नरेन्द्र ठठाकर हँस पड़ा।

"क्या खूब।" प्रेम ने सुना। "छीः" उसने कहा।

केतकी प्रेम के पत्र पढ़कर अधिकाधिक चिन्तित हो रही थी। प्रेम लिखता था मीना की शिकायतें—"तुम से उसकी पट नहीं सकती है। उसका गर्व तुम नहीं सह सकोगी और तुम्हारा अपमान मैं नहीं सह सकूँगा—" इत्यादि। केतकी की समझ में नहीं आती थी बात।

शकुन्तला की लड़की और वह ऐसी? हो नहीं सकता था। वह समझ रही थी अपनी गलती को।

"प्रेम को भेजकर मैंने गलती की।" उसने कबूल किया।

"क्यों, इसमें गलती कौन-सी है?" विन्ध्येश्वरी बाबू ने पूछा, "उसे पसन्द नहीं आई, यही न? तो. इससे क्या? दुनिया में एक वही लड़की तो है नहीं।"

"लेकिन मेरी सखी—"

"अरे भाई, तो क्या गुलाब में काँटे नहीं होते?" विन्ध्येश्वरी बाबू केतकी की इस भावना को समझ नहीं पा रहे थे। कमलेश्वरी बाबू की लड़की तो है, तुम्हारी देखी हुई....वही तै करो। लेकिन भई, यहाँ यह पसन्द-वसन्द का झमेला नहीं चलेगा। कमलेश्वरी बाबू यह सब खुराफात पसन्द नहीं करेंगे।"

केतकी ने मुँह बनाया। "अरे वही न छछून्दर-सी लड़की है। अनपढ़, गँवार।"

"क्यों मिडिल पास है। फिर उसे कौन नौकरी करना है? मैं गया था उनके यहाँ तो कितनी सुन्दर रसोई बनाई थी उसने!"

"वह खाकर तुम उस पर रीझ गये? क्यों क्या मेरे हाथ की रसोई अब अच्छी नहीं लगती? हो भी सकता है, अब बूढ़ी हुई।" कौतुक-भरे स्वर में केतकी ने कहा।

"हटो भी। क्या अल्लबल्ल बकने लगती हो। अरे, मेरी भी तो बिना पसन्द किये ही शादी हुई थी। तो क्या मेरा जीवन सुखी नहीं रहा? यह पसन्द-वसन्द का नया बखेड़ा सब फिजूल है। क्या वह हम से ज्यादा समझदार है? या हम उसके दुश्मन हैं?" सब-कुछ देख-सुनकर, उसके सुख के लिए ही न तै करते?"

"तुम तो समझते हो नहीं।" केतकी ने झुँझलाकर कहा—"वह जमाना गया, अब तो बिना पसन्द के शादी करना जिन्दगी-भर का उलहना मोल लेना है।"

"यही सब खुराफात उसके दिमाग में भर दिया है न तुमने? लड़के को बिगाड़ दिया दुलार करके," विन्ध्येश्वरी बाबू ने जरा खिजलाकर कहा, "मेरी बात तो तुम हमेशा काट देती हो। कमलेश्वरी बाबू का घर कितना अच्छा है! दो-चार हजार तिलक में भी देते। वह तो कहते हैं विलायत का खर्चा भी दे सकते हैं, अगर प्रेम जाना चाहे।"

"तुम समझते हो कि मेरा लड़का रुपये के मोल बिकेगा?" केतकी ने उत्तर दिया, "मेरा लड़का है, क्या समझा है उसे तुमने?"

"तुम्हारा लड़का है तो सँभालो तुम, मुझे क्यों परेशान

करती हो ? मैं तो उसका दुश्मन ही हो गया। जानो तुम, जाने तुम्हारा लड़का।" विन्ध्येश्वरी बाबू रूठकर चले गये।

और इसी बात को लेकर दो-तीन दिन तक दोनों में बातचीत भी बन्द-सी रही, मान का अभिनय चला।

और तब प्रेम का पत्र आया। केतकी पढ़कर घबड़ा-सी गई। यह राधा कौन है, जिसकी इतनी तारीफ ? प्रेम बीमार था तो उसे खबर क्यों नहीं दी गई ? अज्ञात राधा के प्रति केतकी के हृदय में कृतज्ञता उमड़ पड़ी, उसके प्रेम की सेवा करने के लिए। लेकिन वह डर भी गई। प्रेम ने इतने स्पष्ट शब्दों में उसकी तारीफ लिखी थी कि केतकी डर गई। मीना से असन्तुष्ट होकर कहीं प्रेम राधा की ओर न झुक जाय।

उसने विन्ध्येश्वरी बाबू से जरा-सा जिक्र किया, किन्तु उधर से उसने छोटा-सा उत्तर पाया—तुम्हारा लड़का है। मुझे क्या कहती हो। वह चुप कर गई।

कुछ दिन कटे। प्रेम ने अंगूठी राधा को देने की बात लिखी थी। केतकी अब सचमुच व्यग्र हो उठी—नौबत यहाँ तक पहुँच गई, और शकुन्तला को ज्ञात भी नहीं ? वह तो बीमार थी। लेकिन मीना, पढ़-लिखकर भी क्या वह यह न समझ पाई ? क्या करे वह अब ? प्रेम को बुला ले ? लेकिन, वह अभी कमजोर होगा। स्वयं चली जाय ? सो कैसे होगा ? वह छटपटा उठी—कहीं प्रेम गलती न कर बैठे...जवान था वह, और जवानी, भरी नदी होती है। कब किनारा तोड़कर इधर-उधर बहक जाय, कोई ठिकाना नहीं।

मान-अभिमान छोड़कर वह विन्ध्येश्वरी बाबू के पास जा, रो पड़ी ! घबड़ाकर विन्ध्येश्वरी बाबू ने पूछा, "क्या हुआ ? प्रेम ठीक तो है ?" और रोते-ही-रोते केतकी ने सारा हाल कह सुनाया तथा अपने संदेश भी। विन्ध्येश्वरी बाबू ने उसके आँसू

पोछ दिए। कहा—"बस इसीलिए रोती हो ? लिख दो प्रेम को, मेरी आँखें खराब हो रही हैं, चला आवे। मेरे आँखों की खराबी से चिन्ता हो जायगी उसे, और मन इधर ही लग जायेगा, भटक नहीं सकेगा। अच्छा होते ही चला आयेगा। और साथ ही अपनी सखी को भी लिख दो सब हाल।"

केतकी ने वैसा ही किया। उसी दिन उसने पत्र लिखे, प्रेम को आने के लिए, तथा शकुन्तला को राधा पर नजर रखने के लिए, अंगूठी देने की बात भी उसने लिख दी—"मैंने कहा था, अंगूठी बहू के लिए है।"

उसने लिखा, "लेकिन प्रेम ने राधा को दे दी। सुश्रूषा के बदले में। देखना, कहीं मेरी आशाओं पर तुषारपात न हो जाय। राधा को निकाल दो अपने यहाँ से, या प्रेम से अलग रखो..." पत्र क्या था रोना था एकदम।

"पत्र भेजकर उसे जरा सन्तोष हुआ।

दूसरे ही दिन नरेन्द्र ने अपना विचार सब पर प्रगट किया। वह जायेगा कलकत्ते, नौकरी की खोज में।

सभी चकित रह गए। मानिक बाबू, मीना, शकुन्तला—सभी ने उसे रोका। किन्तु, वह दृढ़ रहा। मीना झगड़ भी गई, रोने लगी, कसम में धराने लगी।

"भाई नहीं है मेरे। तुम्हें पाकर समझी थी कि वह अभाव पूरा हो गया। लेकिन तुम..." उसने रोते-रोते कहा। प्यार से उसका सर थपकाते हुए नरेन्द्र ने कहा, "जाने दे बहन, क्या दूर रहूँगा तो तुम्हारा भाई नहीं रह सकता? क्या निखट्टू भाई ही चाहती हो तुम?" समान वगैरह उसने रात को ही बाँध लिया था।

सब ओर से निराश हो, मीना ने प्रेम से अनुनय की—आप ही समझाइये न, शायद आपके कहने से रुक जाय।"

"मेरी समझ से तो जाना ही ठीक है," प्रेम ने कहा, "जीवन में कुछ काम करना जरूरी है। फिर कलकत्ते कौन दूर है?" शब्दों के रूखेपन से मीना का सन्देह बढ़ गया। "आप दोनों में क्या हुआ है?" उसने पूछा। उत्तर न पा, वह नरेन्द्र की

ओर मुड़ी। "नहीं बताओगे भैया ?" आज उसने पहले-पहल उसे भैया कहा था। नरेन्द्र विचलित हो उठा। "कुछ नहीं बहन !"

"आप भी न बतायेंगे ?" उसने प्रेम से पूछा।

"कुछ हुआ हो तो बताऊँ ?"

"रह जाइये न, नरेन्द्र बाबू ?" राधा ने धीरे से कहा।

"नहीं राधा, मेरा जाना ही ठीक है। नरेन्द्र ने सिर झुकाये उत्तर दिया। और वह चला ही गया। मीना बड़ रोई, दिन-भर मुँह फेराये बैठी रही। प्रेम को आश्चर्य हो रहा था, यह क्या वही मीना थी जिसे उसने हृदयहीन समझा था ?

"और उसी दिन से प्रेम से भी वह दूर रहने लगी। सामने पड़ती भी, तो शीघ्र एक ओर हट जाती। प्रेम को खिलाने-पिलाने का भार फिर राधा पर पड़ा। वह भी अब सकुचाती। किन्तु मीना उसे अब जबरदस्ती भेजती। 'बहन' कहने लगी थी उसे, "अंग्रेजी में 'सिस्टर' कहते हैं। मैं भी बहन कहूँगी ?" उसने कहा था हँसकर जरा चिढ़ाने के स्वर में।

प्रेम के भीतर जो आग जल रही थी उसमें ईंधन पड़ रहा था, इसका ध्यान किसी को भी नहीं था।

प्रेम स्वयं चकित था कि उसे क्या हो गया है। किन्तु, जिस दिन उसने नरेन्द्र को राधा का हाथ पकड़े देखा, उसी दिन—उसी क्षण उसे ज्ञात हो गया था कि राधा उसके जीवन में कितनी प्रमुख हो गई है। राधा को दूसरा कोई छुए—चाहे इसकी कल्पना मात्र से ही, प्रेम के हृदय में क्रोध उमड़ आता। उसने आवेश में आकर अपने हृदयगत भाव प्रगट कर ही तो दिये थे। उस दिन उसे आश्चर्य होता था—वह कैसे इतने निर्भीक, स्पष्टरूप से कह सका ? अपने को राधा का गार्जियन कहते उसे जरा भी दुविधा न हुई, न हिचक। साथ ही वह लज्जित भी था। अगर

राधा ने सुना होता तो क्या समझती उसे ? क्या तब वह नरेन्द्र की तरह ही उससे भी दूर भागने की चेष्टा करती ? प्रेम चिन्तित हो उठता और चिन्ता के फलस्वरूप उसकी आन्तरिक व्यथा बढ़ती जाती, राधा के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता जाता।

उसने माँ को बहुत-कुछ लिख दिया था। किन्तु बात को स्पष्ट करके लिखने में हिचकता था। समझता था कि माँ इस सम्बन्ध का विरोध करेगी। उसकी इच्छा थी कि पहले माँ राधा को देख ले, तब उसका विरोध कम हो जायगा। वह यही सोच रहा था कि किस उपाय से वह माँ के पास राधा को ले जाय जबकि उसकी आशाओं पर तुषारपात हुआ।

उसे माँ का पत्र मिला—"तुरन्त चले आओ। तुम्हारे पिताजी की आँखें बहुत खराब हो गई हैं..." वह घबड़ा उठा, साथ ही आशा की एक क्षीण रेखा उसके हृदय में जगी—इसी बहाने वह राधा को ले जा सकेगा घर। वह लज्जित हो उठा कि इस बुरी खबर सुनकर भी उसका ध्यान राधा ही की ओर गया। उसने तै किया कि वह दो-एक रोज के अन्दर ही चल देगा यहाँ से। राधा तो अभी रहेगी यहीं, वह फिर लौट आयगा। यही सोच वह पत्र लिखने बैठा माँ को।

उसी डाक से शकुन्तला के नाम भी केतकी का पत्र आया था। प्रेम ने समझा कि वह उसे वापस बुलाने के कारण समझाते हुए लिखा होगा, ऐसा नहीं कि शकुन्तला बुरा मान जाय—इसीलिए। माँ बड़ी समझदार है, उसने सोचा!

दोपहर बीत चुकी थी। या यूँ कहें कि सन्ध्या हो रही थी। आकाश मेघाच्छन्न था इसलिए अन्धेरा-सा प्रतीत होने लगा था। प्रेम सोच रहा था कि घूमने जाय या न जाय।

इसी समय मीना ने आकर कहा—"घूमने नहीं चलियेगा ? माँ ने कहा है कि दिन-भर बैठे रहे हैं, घूम आवें।" मीना गम्भीर

थी—भीषण गम्भीर ! उसके मुँह की भावभंगी देखकर प्रेम चकित हो गया। बोला—

"क्या हुआ है तुम्हें ? चेहरा रोना-रोना-सा लगता है।"

मीना ने संक्षिप्त उत्तर दिया—"कुछ नहीं, दिन-भर बैठे-बैठे थक गई हूँ।"

"तो चलिये टहल आया जाय, लेकिन पानी पड़ने लगेगा।"

"भीग ही जायंगे तो कौन मोम के बने हैं जो घुल जायंगे ?" मीना ने कहा।

"मोम के होते तो न घुलते।" प्रेम ने हँसकर कहा—"खैर, चलिये।"

दोनों निकले।

हवा चलने लगी थी। दोलायमान वृक्ष सिर हिला-हिलाकर जता रहे थे कि आँधी आने वाली है। किन्तु मीना इधर-उधर न देखे जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये चली जा रही थी। प्रेम को उसके साथ रहने के लिए लम्बे-लम्बे डेग मारने पड़ते थे।

प्रेम ने पूछा भी—"आज क्या है जो पाँव धरती पर नहीं पड़ते ? उड़ी जा रही हो ?" किन्तु मीना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चलती रही। प्रेम ने लक्ष्य किया कि वह नदी की ओर जा रही है, वहीं जहाँ प्रेम ने उसे साथ बह जाने का निमन्त्रण दिया था। प्रेम भयभीत हो उठा। क्या आज मीना वह निमन्त्रण स्वीकार करेगी ? किन्तु वह तो अब उस निमन्त्रण को वापस ले चुका है !

उसी पत्थर पर आ, मीना बैठ गई—मौन, गम्भीर बहती नदी की लहरों पर दृष्टि जमाये। प्रेम को लगा जैसे विरहिणी नदी से प्रिय के निकलने की अपेक्षा करती हो।

वह भी बैठ गया। निस्तब्धता भंग करने की हिम्मत उसकी नहीं हुई।

आखिर मीना ने ही पूछा, "डाक्टर साहब! मनुष्य असीम की ओर क्यों इतना आकर्षित होता है?" प्रेम प्रश्न सुनकर समझ न पाया कि यह किस बात की भूमिका है। क्षण-भर सोचकर उसने उत्तर दिया—

"क्योंकि वह स्वयं ससीम है, इसी लिए।"

"याने?" मीना का ध्यान नदी पर ही था।

"याने, वह सीमित है, बन्धा हुआ है, इसीलिए मुक्त होने की, असीम होने की चेष्टा करता है। अप्राप्य की आशा या अपने विरोधी भाव की प्राप्ति द्वारा समन्वय प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य होता है।"

"और असीम? क्यों वह सीमित हो जाता है? अगर सीमित की मुक्ति असीम है, तो असीम क्यों बन्धता है?" मीना दूर से बोल रही ज्ञात होती थी।

"असीम क्योंकि असीम है, वह सीमा में आनन्द पाता है, अपने को बाँधना ही उसकी लीला है। ससीम असीम का मेल—दोनों का समन्वय—जीवन होता है।"

मीना चुप रही बड़ी देर तक, मानों उसने प्रेम के शब्द सुने ही नहीं, फिर एकाएक बोली, "यह नदी—इसे आप क्या कहते हैं—असीम या सीमित?"

प्रेम विचारने लगा—इस प्रश्न का क्या उत्तर दे। समझ नहीं पा रहा था वह। मीना ने फिर पूछा, मानो इस प्रश्न का उत्तर उसे जरूरी न था।

"यह नदी क्यों बहती जाती है?"

"समुद्र से मिलने।"

"वह तो कवि कहते हैं, लेकिन वास्तव में?"

"वास्तव में," प्रेम ने कहा, "जल सब से कम रुकावट वाला

स्थान अख्तियार करता है—Takes the line of least resistance."

"प्रकृति का नियम यही है न ? सरलतम मार्ग का ग्रहण ?" मीना ने फिर पूछा।

"हाँ !"

"तब, डाक्टर साहब, मनुष्य क्यों कठिनाइयों में भी जीता है, जबकि मरना इतना सरल है ?"

"मरना तो बड़ा कठिन है मीना !" प्रेम ने कहा। फिर पूछा—

"आज तुम क्या सब सोच रही हो ?" मीना ने सर उठाया। प्रेम ने देखा—उसकी आँखें गीली हैं। "यह क्या ? रो रही हो तुम ?" उसने व्यग्र होकर पूछा।

मीना हँसी, जबरदस्ती।

"नहीं तो।"

"बताओगी नहीं, क्या हुआ है ?"

"हुआ तो कुछ नहीं, और हुआ बहुत-कुछ।" फिर कुछ देर चुप रह कर, "डाक्टर बाबू, नहाइयेगा, नदी बुला रही है।"

प्रेम सचमुच घबड़ा गया।

"चलो घर, मीना !"

"घर ?" मीना ने पूछा, "मेरा घर है कहाँ ?"

"क्यों, क्या वह घर तुम्हारा नहीं है ?" प्रेम आज मीना को समझ नहीं रहा था, वह पहेली-सी बन रही थी।

"लड़की तो पराई होती है," मीना की रुलाई न रुकी। प्रेम भौचक-सा देखता रहा।

धीरे-धीरे बूँदें पड़ने लगीं, किन्तु दोनों शायद उनका अनुभव भी न कर रहे थे। वर्षा तेज हो गयी, हवा के झोंके भी, तो प्रेम ने कहा—

"मीना चलो।"

"कहाँ ?" प्रेम निरुत्तर हो गया। उसे लगा जैसे मीना उसके मुँह से फिर 'घर' चलने का निमंत्रण चाहती है—'घर' का, किन्तु घर शब्द का प्रयोग करने में वह हिचका। मीना उसका अर्थ लगा लेगी। और अब, अब वह निश्चय कर चुका था—राधा।

"मौसी चिन्तित होगी," प्रेम ने कहा।

"तो होने दो, जाओ तुम।" प्रेम ने मीना का हाथ पकड़ उसे उठाने का उपक्रम किया।

"चलो मीना, पानी बड़े जोर से आ रहा है।" एक झपटे से मीना ने हाथ छुड़ा लिया। अपने को संयत किया, आँसू पोंछ दिये, फिर बोली—

"डाक्टर प्रेम ! आप कब जा रहे हैं ?"

"परसों—"

"फिर कभी मत आइयेगा, मैं आपको देखना भी नहीं चाहती, मैं आपसे घृणा करती हूँ, घृणा ! समझे ?" स्वर उसका रो रहा था। प्रेम निरुत्तर रहा। मीना ने फिर कहा, "आपने आकर मेरा संसार उजाड़ दिया..."

"मैंने क्या किया है ?"

"मैं असीम थी, बन्धन का मोह दिखा दिया आपने; मैं ससीम थी, आपने सीमा तोड़ने का तरीका बता दिया; मैं सन्तुष्ट थी, आपने उसमें असन्तोष का बवंडर उठा दिया...."

"सो कैसे ? जहाँ तक मैं समझता हूँ...."

"आप कुछ नहीं समझते।" मीना ने बीच ही में कहा। एक दिन आपने कहा था नदी में बह जाने को, चलियेगा आज ?" प्रेम चुप रहा।

"उस दिन आप तय्यार थे मैं नहीं। आज, मैं तय्यार हूँ आप डरते हैं—" मीना की वाणी रुद्ध हो गयी। "डाक्टर

साहब ! मुझे माफ करें, मैंने आपको बड़ा तंग किया है—" उसने झुककर प्रेम के चरण छुए, प्रेम संकुचित हो उठा। "यहीं-इसी नदी पर—आपने मेरा हाथ थाम, मुझे नदी में गोता खिलाया था। जीवन में वह स्मृति अमिट रहेगी...चलिए लौट चलें।" अन्तिम शब्द कहते समय मीना का स्वर एकदम बदल गया था। प्रेम के लिए सचमुच आज वह पहेली-सी थी।

मीना चल पड़ी, अन्धेरा घना हो गया था। पानी भी खूब जोर का हो गया था। प्रेम ठोकर खाते हाथों से आँखें ढके पीछे-पीछे चला। मीना उसे दिखाई ही नहीं दे रही थी, कभी-कभी बिजली के प्रकाश में वह उसे देख पाता आगे बढ़ते हुए।

वह मीना की बातें दोहरा रहा था मन-ही-मन, तो क्या मीना उसे प्रेम करने लग गई थी। वह घबड़ा गया....लेकिन आज—आज ऐसी क्या घटना घटी जो मीना इस तरह से फूट पड़ी। यह रहस्य उसके लिए जटिल हो उठा।

घर पहुँचते ही मीना एकदम अपनी कोठरी में चली गई। प्रेम भी अपने कपड़े इत्यादि बदलकर निकला ही कि मानिक बाबू ने उससे कहा—जाओ तुम्हारी मौसी बुला रही है।

"क्या दर्द फिर ?" प्रेम ने पूछा ?

"हाँ, कुछ मालूम होता है।"

प्रेम जल्दी-जल्दी उस ओर चला गया।

शकुन्तला आज प्रसन्न थी। मीना उसके समीप बैठने लगी थी उसे आराम भी हो रहा था, उसकी आशायें भी सुफल होने जा रही थीं। वह मन-ही-मन सोचती थी कि प्रेम को फीस में वह अपना सारा धन दे देगी—हृदय का टुकड़ा मीना। अपने ढंग से मीना को वह अत्यन्त प्यार करती थी। कई दफे उसने राधा से कहा भी था "राधा बेटी! मीना के जाने से घर सूना होगा तो तू रहेगी न?" और राधा ने सिर झुकाये मौन सम्मति जताई थी।

आज भी तो उसने सुबह ही मीना को मीठी झिड़की दी थी वह प्रेम को चाय देना भूल गई थी। इसी पर "क्या ऐसे ही घर चलायगी तू?" उसने कहा था।

किन्तु उसे क्या मालूम था कि चारों ओर से घिर रहे बादल उसके सुखस्वप्न को दिग्दिगन्त में उड़ा देंगे।

केतकी का पत्र पाकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। लिफाफा हाथ में लिए वह उसे उलटती-पुलटती रही। मीना ने पूछा—"किसका पत्र है?"

शकुन्तला ने जरा हँस कर कहा, "तेरी सास का।" धीर मन

से उसने पत्र खोला। पढ़ते-पढ़ते उसकी हँसी कहाँ चली गई, पत्र हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। मीना ने उठा लिया...पढ़ गई।

"क्या है ? "राधा ने पूछा—धीरे से—संकोच से।

"कुछ नहीं....।" मीना ने होंठ दबाये उत्तर दिया। राधा से उसकी नजर मिली, राधा ने देखा कि उसकी आँखों में एक विचित्र भाव है। ईर्षा ? द्वेष ? सहानुभूति ? घृणा ? सम्मान ? राधा समझ न सकी। संकोचवश वह और कुछ पूछ भी न सकी।

थोड़ी देर बाद शकुन्तला ने आँखें खोलीं। कहा, "मीना ! प्रेम दिन-भर बैठा रहा है, उसे टहलाने ले जा।" "लेकिन माँ" मीना ने कुछ कहना चाहा, शकुन्तला ने धमका कर कहा, "बातें न बना, जो कहती हूँ-सो कर।"

"उससे फायदा ? तुम व्यर्थ घबड़ा गई हो माँ।"

"मुझे समझा मत ! तू जा"

चुपचाप उठकर मीना चली गई। थोड़ी देर बाद ही शकुन्तला ने खिड़की से देखा, प्रेम के साथ वह जा रही थी, नदी की ओर...जब तक वे दोनों दृष्टि से ओझल नहीं हो गये, वह उसी ओर देखती रही, तब, राधा की ओर मुड़ी।

"राधा !"

"हाँ माँ !"

"हाँ माँ ! शरम नहीं आती माँ कहते ?"

शकुन्तला की आँखें जल उठीं। स्वर व्यंग्यमय हो उठा। राधा चकित होकर देखती रह गई।

"देखूँ तेरा हाथ ?" शकुन्तला ने हाथ बढ़ा, राधा का हाथ उठा लिया, देखा, अँगूठी चमक रही है।

'कहां से मिली यह अँगूठी ?' उसने पूछा। राधा का चेहरा लाल हो गया। वह चुप रही।

"बनती थी बड़ी भगतिन, मैं भी समझती थी कि तू भली

लड़की है....मैं क्या समझती थी कि तू भीतर ही भीतर इतनी बड़ी पापिन है ? बर्ना हरगिज यहाँ न रहने देती"

"मैंने क्या अपराध किया है, माँ। जो यूँ..."

"फिर माँ कहा ? तेरे जैसी की माँ मैं हूँ ? मेरे ही घर में आग लगा, फिर माँ कहते शरम नहीं आती ? किसने दी थी अँगूठी ?"

राधा चुप रही।

"प्रेम ने—कहते लाज लगती है ?"

राधा चुप रही !

"क्यों दी थी ?" अबकी राधा चुप न रह सकी स्वर का विद्रूप उसे सह्य नहीं हुआ।

"यह तो उन्हीं से पूछती, तो अच्छा होता।" उसने कहा।

"हाँ, उन्हीं से पूछती...तुझसे पूछने का हक मुझे क्या है ? इसी जोर पर माँ कहती थी। तू ने खूब धूल झोंकी मेरी आँखों में। पहले सुना करती थी कि सभी नर्सें दुश्चरित्रा होती हैं, तुझे देखकर समझी थी कि वह झूठी बात है। अब, देखती हूँ.... वही बात ठीक थी"

राधा तड़प उठी।

"माँ !" उसने कहा,

"ना भई ! आप जैसी औरतों को घर में रखकर हमें अपना जात धर्म नहीं देना है...आप..."

"मैं अभी चली जाती हूँ, पर माँ ! आपने कितनी भारी गलती की है..."

"गलती की है ? तू क्या प्रेम को नहीं चाहती ? क्या उसने तुझे अँगूठी नहीं दी ?"

"दी है..."

"क्या जबर्दस्ती ही ?" घृणामिश्रित हँसी हँसकर शकुन्तला ने कहा—' और क्या क्या दिया है ?"

राधा जड़ होगई थी...

"बोलती नहीं है काहे ? मैं छीन थोड़े ही लूँगी ? उसने दिया, तुमने लिया, चाहे इज्जत बेच कर ही, लेकिन तुम लोगों के लिए, इज्जत का मूल्य ही क्या ?...मेम न बन गई हो..."

"बस करें !" राधा ने अस्फुट स्वर में कहा। "मैं चली जाती हूँ...."

"बड़ी दया होगी। आप को तो और मिल भी जायगे मेरे प्रेम बेचारे को क्यों बर्बाद कीजियेगा"

राधा उन्मत्त की तरह उठी, बाहर की ओर बढ़ी....

"अपना हिसाब लेती जाइये...." परन्तु वह रुकी नही।

बाहर पानी मूसलधार बरस रहा था। उसका उसने ख्याल ही नहीं किया....वह उसी अन्धकारमय वर्षा में मिल गई...

उसके बाद...शकुन्तला रोई, खूब रोई....मानिक बाबू ने आकर देखा, सब हाल जाना, चुप हो रहे। सिर्फ इतना ही कहा "जल्दबाजी की तुमने, मुझसे पूछ तो लेतीं।"

जब प्रेम और मीना लौटे तो मानिक बाबू ने प्रेम को भेज दिया शकुन्तला के पास। उत्तेजना के कारण उसे फिर दर्द होने लगा था।

प्रेम आया तो देखा, शकुन्तला मृत-सी पड़ी हुई है। आँसू अभी तक सूखे नहीं हैं, कपोल भीगे ही हैं।

"बहुत अधिक दर्द है मौसी ?" उसने सहानुभूति-सूचक स्वर में पूछा। शकुन्तला ज्यों-की-त्यों पड़ी रही।

"राधा कहाँ गई ?" उसने चारों ओर देखकर पूछा। कोई उत्तर न मिला उसे।

"मौसी !" उसने जोर से पुकारा, "राधा कहाँ है ?"

शकुन्तला उठ बैठी। कुछ देर प्रेम की ओर देखती रही, फिर बोली—"चली गई।"

"चली गई? कहाँ?"

"निकाल दिया है मैंने उसको!"

"क्यों?" प्रेम व्यग्र हो उठा था।

"क्यों? पूछते हो क्यों? शरम भी नहीं आती?"

"मौसी! क्या सब बक रही हो?"

"बक रही हूँ, क्यों न हो लाज-शरम? सब तो धोकर पी गये मालूम होते हैं।"

प्रेम कुछ-कुछ समझने लगा था माँ का पत्र। क्या माँ ने.... माँ ने उसे धोखा दिया?

"क्या बात है मौसी?" उसने धैर्यपूर्वक पूछा।

"मुझसे क्या पूछते हो? देखो—" केतकी का पत्र उसके सामने फेंकती हुई शकुन्तला ने कहा।

प्रेम ने पत्र आद्योपान्त पढ़ा। पढ़कर कठपुतली-सा खड़ा रहा। फिर बोला, संयत स्वर में ही।

"मौसी! उसे निकालकर अनुचित किया तुमने! मैं जाता हूँ उसे खोजने।"

"उसे खोजने?"

"हाँ, मौसी! अब साफ कह देना ही ठीक होगा, मैं उसी से शादी करूँगा।"

"लेकिन..."

"कुछ नहीं। चाहे सारी दुनिया विरोध करे, मैं निश्चय कर चुका हूँ।"

वह धीरे-धीरे बाहर निकला। कमरे से टार्च उठाई और बाहर की ओर चला। दर्वाजे पर उसे मीना मिली।

"कहाँ जाते हो?" मीना ने धीरे से पूछा।

"उसे खोजने।"

"खोजकर—"

"विवाह करूँगा।"

"और आपकी माँ? समाज?"

"देखा जायगा!"

"मीना ने फिर झुककर उसे प्रणाम किया। मुझे माफ करेंगे मैंने आपको गलत समझा था। जाइये, भगवान आपको सफल करें।" वह द्रुतपद से भीतर चली गई। प्रेम पहले तो भौंचक हो गया फिर एक निश्वास छोड़कर निकल गया।

उसे पता नहीं कि वह किधर-किधर, कहाँ-कहाँ भटका। कई दफे नदी की ओर भी गया। शायद...किन्तु उसे कहीं कोई न मिला। वर्षा जारी थी, किन्तु उसका जोर कम हो गया था। पानी की नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ रही थीं। हवा भी कम हो गई थी। प्रेम का शरीर चूर हो रहा था। टार्च खतम होने पर आ गई थी।

वह लाइन पार कर कच्ची सड़क पर चला जा रहा था। सामने जंगल था—घोर बियाबान, उसने सुन रखा था कि उधर बाघ रहता है। वह जरा हिचका, किन्तु फिर बढ़ा।

बिजली की चमक से उसने देखा। कुछ गठरी-सी सामने पेड़ की छाया में बैठी है।...बाघ! उसने सोचा। वह खड़ा हो गया। फिर बिजली चमकी....उसे साफ दिखाई दिया कि वह कोई आदमी-सा है। हिम्मत करके उसने पुकारा—"कौन है?" वह गठरी हिली। एक अस्फुट आर्त स्वर निकला। प्रेम ने देखा—राधा खड़ी है।

"राधा!" उसने पुकारा।

राधा पीछे हट गई—"तुम-तुम..." स ने कहा। "हाँ राधा मैं" प्रेम उसके समीप पहुँच गया था, उसका हाथ थामे था।

"चलो," उसने कहा। राधा ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा की। "छोड़ दो मुझे..."

"चलो, यहाँ वर्षा में भीग गई हो एकदम।"

"नहीं जाऊँगी...छोड़ो," प्रेम कठिनता से राधा के मुँह से निकले स्वर सुन सकता था।

"अच्छी बात है तो बैठो यहीं।" प्रेम बैठ गया वहीं।

"तुम जाओ, क्यों भीगोगे?"

"भीग तो गया ही हूँ चमड़ी तक," प्रेम ने कहा। राधा ने देखा सचमुच उसके कपड़ों से पानी की धार बह रही थी।

"तुम क्यों आये?" उसने रोकर पूछा।

"क्यों आया?" प्रेम ने दोहराया "इसलिए कि न आता तो शायद मर जाता; इसलिए आया कि तुम्हारे बिना जीवन मृत्यु है, इसलिए आया कि मैं तुम्हारी छाया बन चुका हूँ।"

राधा ने उसका मुँह बन्द कर दिया। वह काँप रही थी थर-थर। प्रेम को उसके हाथ से वह कम्पन ज्ञात हो रहा था।

"यह क्या कह रहे हो तुम?" राधा ने पूछा—"मुझ पापिनी का इतना आदर..."

"तुम पापिनी रहो, देवी रहो, राक्षसी रहो—कोई रहो? मैं तो इतना ही जानता हूँ कि तुम राधा हो।" राधा रोने लगी। इतना बिलख-बिलख कर कि प्रेम विचलित हो उठा। उसने राधा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "राधा रोओ मत।" किन्तु राधा चुप न हुई। बोली अगर तुम जानते कि मैं क्या हूँ, तो यह गलती न करते। तुमने पूछा भी था—मैंने तब नहीं बताया। उफ़, बता देना कितना अच्छा होता!"

"क्या बता देना?"

"अपने जीवन का हाल।"

"फिर कभी कहना, अभी चलो।"

"नहीं, अभी..." और प्रेम के चरणों में बैठ राधा ने अपने जीवन की कहनी सुनानी आरम्भ की। प्रेम निश्चित बैठा सुनता रहा।

राधा के माता-पिता थे तो भले घर के ही, किन्तु पिता मर गये और माता जवानी में विधवा होकर सँभल न सकी। फल-स्वरूप राधा गर्भ में आई। और माँ को संसार में निकलना पड़ा। न जाने किन कठिनाइयों से गुजरा था राधा का बचपन! माँ तो और कोई चारा न देख शरीर बेचने पर मजबूर हुई थी। जब न सह सकी तो तीन वर्ष की राधा को छोड़ गंगा में डूब मरी। राधा का पोषण एक पड़ोसिन वृद्धा ने किया। शायद इसी आशा से कि कुछ वर्ष बाद उसकी सुन्दरता तथा जवानी से नाजायज फायदा उठावे। बचपन से ही वह काम करने लग गई थी। एक रईस के यहाँ बासन इत्यादि मलना...उन्हीं के लड़के से उसने पढ़ना-लिखना सीखा। और पढ़ने की ओर उसकी रुचि हुई, किन्तु जब वही लड़का फिर उसे ले गया, पन्द्रह वर्ष की थी वह और कुछ दिन के बाद छोड़ भी गया। तो उसने समझा कि पढ़ना इतना सरल नहीं। गर्भिणी थी वह। हस्पताल में मृत शिशु को जन्म दे वह फिर लौट आई उसी वृद्धा के पास। उसके बाद जो अत्याचार शुरू हुए उस पर। क्योंकि एक दफे धोखा खाकर वह अब सँभल गई थी। शरीर बेचने पर तैयार न थी। तब एक नर्स से परिचय होने का लाभ उठा वह घर से भाग गई, नर्सिंग सीखा उसने और अब—अब फिर वह जा रही है असीम संसार में स्थान खोजने।

प्रेम ने सब सुनकर धीरे से कहा—"स्थान खोजना नहीं होगा तुम्हें राधा, वह मैं खोज चुका हूँ। कल ही हमारा विवाह हो जायगा। सिविल मैरेज—"

"सब सुनकर भी ?" राधा का स्वर अति उत्सुक, अविश्वास से भरा—उत्फुल्ल—सभी था

प्रेम ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। "राधा, सब सुनकर क्या तुम राधा न रह गई ? बहुत दुःख उठाया है। मैं यही चेष्टा करूँगा कि तुम्हें दुःख और न होने पावे—"

"और तुम्हारी माँ ?" राधा ने धीरे से पूछा।

प्रेम के चेहरे पर चिन्ता की एक रेखा आई।

"माँ ?" उसने कहा, "मेरी माँ क्षुद्रहृदया नहीं है। तुम्हें देखकर वे जरूर तुम्हें प्यार करेंगी।"

"अगर न करें तो ?"

"तो हमारा अलग संसार बनेगा छोटा-सा—" राधा के हाथों पर प्रेम का बन्धन दृढ़ हो गया था। "और उस संसार की लक्ष्मी होगी तुम !"

अगर प्रेम उस समय राधा का चेहरा देख पाता तो उसे ज्ञात होता कि चन्द्र पृथ्वी पर उतर आया है। राधा बोल न सकी। उसने प्रेम की चरण धूल लेनी चाही, किन्तु प्रेम ने रोक लिया। उठाकर धीरे-से उसका माथा चूम लिया।

प्रेम के कन्धे पर सिर रखे कब तक राधा खड़ी रही उसे नहीं मालूम। वह सोच रही थी कि अगर यह स्वप्न है तो वह कभी न जगे। उसने कान में प्रेम के शब्द सुने—धीरे-धीरे मानो गोपनीय हो। प्रेम का श्वास उसके कानों को गर्मा रहा था—"राधा तुम मेरी हो न ?"

राधा ने धीरे से कहा—"अँगूठी पहनकर ही तो मैंने तुम्हारी गुलामी स्वीकार कर ली थी।"

वृष्टि थम गई थी।

प्रेम वहीं बैठ गया पेड़ के तने से पीठ सटा के, राधा क्लान्त, क्षीण-सी उसके कन्धे पर सिर रखे सो गई, प्रेम भी

क्लान्त हो गया था, किन्तु राधा का सा विश्वास वह कहाँ से लाता ? जंगल, अन्धकार निस्तब्ध रात्रि में अजीब ध्वनियाँ, उसे चौकन्ना किये थी। उसने देखा, राधा—ठिठुरती सिकुड़ी राधा—उसके कन्धे पर सिर रखे एकदम शिशु-सी सो रही है। इस सोने में उस पर कितना विश्वास था, यह जानकर प्रेम का हृदय उल्लास से भर गया।

"भगवन् यह विश्वास सदा बना रहे। और मैं भी इसके उपयुक्त बना रहूँ।" उसने मन-ही-मन कहा।

सोचते विचारते ही वह भी औंघाने लगा।

जब आँख खुली तो देखा। आकाश साफ हो रहा है। प्राची में ज्योति फैल रही है। पक्षिगण भी कलरव करने लगे हैं। उसके हिलने से राधा भी जग गई। यह देख कि वह कैसे सो रही थी, लज्जा से उसका चेहरा लाल हो गया। वह उठ बैठी। प्रेम भी उठा, अंगड़ाई ली, जकड़े हुए अंगों को सीधा किया। फिर कपड़ों से पानी गार दिया। राधा भी, भीग गई ही थी—कुम्हला गई थी, किन्तु प्रेम को वह गीला सौन्दर्य दिव्य ज्ञात हुआ। उसके मन में मीना की वह भीजी मूर्ति उगी—मन-ही-मन उसने दोनों की तुलना की—सलज्जा, रक्तिम कपोला राधा—और हँसती मीना...उसे लगा जैसे राधा के इस सौन्दर्य को मीना छू भी नहीं सकती। कैसे वह मीना की ओर आकर्षित हुआ था। यह वह समझ नहीं पाया।

उसने देखा—राधा कनखियों से उसकी ओर ताक रही है।

"जाओ, कपड़े गार लो।" उसने कहा।

दोनों ने सुबह की धूप में ही कपड़े सुखाये। फिर बैठे परिस्थिति को देखने। राधा ने फिर आग्रह किया— "तुम लौट जाओ—मुझ अभागिनी के लिए क्यों जीवन नष्ट करोगे।"

प्रेम ने उसे बोलने का अवसर नहीं दिया। बोला, "राधा!

मैंने जीवन की बाजी लगाई है। पाँसा फेंक चुका हूँ। और मुझे निश्चय है कि यह बाजी मैं नहीं हारूँगा।" हमारा जीवन अब एक सूत्र में बँध गया। अब तो एक ही पथ है दोनों के लिए, एक ही संसार।

"क्या होगा अब ?" राधा ने कुंठित भाव से पूछा।

"चलो।"

"वहाँ नहीं," राधा ने काँपकर कहा, "माँ की बातें नहीं सह सकूँगी, उन्हें मुँह दिखाऊँगी क्योंकर ?"

"वहाँ नहीं, मैं तुम्हारे रहने का प्रबन्ध तो अन्यत्र ही करूँगा, हमारा संसार अब अलग ही बनेगा।

"और माँ ?"

"कौन, शकुन्तला मौसी ?"

"नहीं तुम्हारी माँ। वे कुछ...."

माँ को मैं खुद जाकर समझाऊँगा, मुझे विश्वास है कि मेरी माँ मुझे नहीं दोष देंगी। उनका हृदय विशाल है, राधा! तुम उन्हें देखोगी तो जानोगी।" कहते-कहते गर्व से प्रेम फूल उठा। "तुम जरा भी चिन्ता मत करो ?"

"और तुम्हारे पिता जी।" राधा अभी भी संकोच और कुंठा से अभिभूत थी।

प्रेम के चेहरे पर चिन्ता की रेखा दौड़ गई।" माँ से ही कहूँगा, माँ ही उन्हें समझा लेंगी" उसने जरा हिचक कर कहा, "वे चाहे कुछ कहें, माँ मेरे साथ है। माँ का आशीर्वाद रहेगा तो मेरे लिए की बाधा बाधा नहीं।"

बात वहीं रह गई प्रेम ने बस्ती के बाहर ही एक छोटा-सा मकान ठीक किया। भाग्यवशात् उसकी जेब में कुछ रुपये थे। उसीसे खाने-पीने का प्रबन्ध किया उसने। और तब वह निकला मानिक बाबू के घर जाने के लिए। लज्जा से उसके

पाँव मन मन के हो रहे थे, किन्तु जब वह दुनिया के समक्ष खड़ा होने को प्रस्तुत था, तब लज्जा कैसी ?

मानिक बाबू घर पर नहीं थे, द्वार खोला मीना ने—प्रेम को देख वह एक ओर हट गई। प्रेम हिचका भीतर जाये, या न जाये इसी दुविधा में था कि मीना ने कहा, "आइये डा० प्रेम क्या रात-भर में ही हम पराये हो गये ?" मीना का स्वर संयत, शान्त था। प्रेम ने भीतर प्रवेश किया। मीना ने फिर पूछा, "बहन का पता मिला ?"

"हाँ," मीना का स्वर, भावभंगी तथा 'बहन' सम्बोधन से प्रेम चकित था। वह और क्या करे यह सोच न पाया, "मौसी कैसी है ?—" उसने पूछा।

"ठीक है।"

"देखूँ।" प्रेम भीतर बढ़ गया। मीना के सामने खड़े होने उसे संकोच मालूम होता था।

शकुन्तला ने उसे देखा तो मुँह फेर लिया। प्रेम को ठेस लगी।

"मौसी !" उसने पुकारा।

शकुन्तला ने चादर से मुँह ढाँप लिया, उत्तर नहीं दिया। प्रेम निराश होकर लौट आया। वह रहकर क्या करेगा ?

दरवाजे पर फिर उसे मीना मिली। रास्ता रोके। "ठहरिये" उसने धीरे से कहा। प्रेम रुक गया। उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से मीना की ओर देखा।

"बहन कहाँ है ?" मीना ने पूछा।

"यहीं—"

"अब क्या कीजिएगा—"

"उससे विवाह," प्रेम ने धीरे से कहा।

मीना ने हाथ बढ़ाया उसमें एक छोटा-सा डिब्बा था। "यह

उन्हें दे दीजिएगा छोटी बहन की ओर से उन्हें विवाहोपलक्ष्य में भेंट है। और डाक्टर प्रेम, मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ आप दोनों के साथ हैं उसका गला रुंध गया। आँखें पोंछती हुई वह फिर बोली, "उनसे कह दीजिएगा, इस बहन को भूलूँगी नहीं। कहती-कहती वह तेजी से भीतर चली गयी, प्रेम वह डिब्बा लिए खड़ा रह गया स्तम्भित।

राधा सब हाल सुनकर रो उठी, "उसके प्रति मैंने कितना बड़ा विश्वासघात किया है," उसने कहा, "उसी का नमक खा उसी के...."

"नहीं राधा, यह मत कहो। जो जिसका होता है, उसे ही प्राप्त होता है। तुम मेरी थीं मैं तुम्हारा था जन्म-जन्मान्तर से तभी हम एक-दूसरे को मिले।" प्रेम ने गंभीरतापूर्वक कहा।

राधा ने वह डिब्बा खोला देखा, एक जोड़ा चूड़ियाँ, एक चेन और एक पत्र। दो ही लाईनें—"ईश्वर तुम्हें चिर सौभाग्य-वती पतिप्रिया, पतिप्राणा करे—मीना।" राधा के आँसू फिर बह निकले, "*हाय बहन मीना,*" उसने कहा।

प्रेम ने उसके आँसू पोंछ दिये, और तुरंत वह चौंका, "यह क्या ?" उसने पूछा, "तुम्हें ज्वर है ?" वास्तव में राधा को ज्वर हो आया था। रात-भर भीगने का परिणाम।

शाम होते ज्वर अधिक बढ़ गया...इनलुफ्लुंजा...प्रेम व्यस्त हो उठा।

दो दिन में राधा का ज्वर हटा। तब प्रेम ने ते किया कि एक दफे घर जा, माँ से भेंट करना जरूरी है, अगर पिता न भी मानें, तो भी अपनी प्रेक्टिस शुरू करने के लिए ही सही, उसे कुछ रुपये की जरूरत होगी ही, माँ से ही उसे रुपये मिल सकेंगे।

एक सप्ताह भर के लिए उसने खाने-पीने का इन्तजाम कर

लिया था, राधा के लिए एक बुढ़िया दाई रख, वह एक दिन रवाना हुआ। कह गया था कि चार रोज के भीतर ही आ जायगा।

उसे बिदा कर, राधा चिन्तित विचार-मग्न-सी खड़ी रह गई भविष्य की कल्पना उसके लिए भयावह थी। "उन्होंने कहा है, सब ठीक हो जायगा" वह सोचती, मन को ढाढस बँधाती, लेकिन चिंता दूर न होती, और तब वह भगवान का स्मरण करती, "तूही रक्षक है दयामय।"

प्रेम तथा शकुन्तला को पत्र लिख केतकी के हृदय से बोझ तो हलका हुआ, लेकिन फिर भी, वह चिन्तित हो उठती। भावी की आशंका उसे कभी-कभी कपा देती, क्या होगा? प्रेम स्वाभिमानी है। कहीं भड़क न जाय? फिर, उसने तो भरसक प्रेम को यही शिक्षा दी है कि जिस बात को वह उचित समझता है, उसे करने में वह दृढ़ रहे, सारी दुनिया के विरोध की भी पर्वाह नहीं करे। क्या उसकी शिक्षा आज उसके ही विरुद्ध उठ खड़ी होगी?

किस बुरी साइत में मैंने उसे भेजा था। वह सोचती, इस से तो अच्छा होता कि मैं कमलेश्वरी बाबू की ही लड़की से ही सम्बन्ध तय कर लेती। सब-कुछ आँखों के सामने ही होता।

कभी सोचती, राधा कौन है, कैसी है? प्रेम उसकी इतनी प्रशंसा करता है, 'तो सचमुच वह प्रशंसा के काबिल होगी, नहीं तो, प्रेम तो दिखावटी बातों पर उलझने वाला लड़का नहीं है।

मानसिक द्वंद्व उसे मथे दे रहे थे, वह व्यग्रता से प्रेम के

आने की प्रतीक्षा कर रही थी। एक रात को यही सब सोचती वह लेटी हुई थी, विन्ध्येश्वरी बाबू पान चबाते, हुक्का गड़गड़ाते पढ़ने में व्यस्त थे, दलीलें सोचते-सोचते कभी माथे पर बल डालते, कभी लिखने लगते, केतकी देखती, सोचती, कि प्रेम भी कभी इसी तरह व्यस्त रहेगा।

उसके विचारों का तारतम्य भंग हुआ, बाहर किवाड़ के पिटने के शब्द से...

"इतनी रात को कौन मुवक्किल आया?" उसने झुँझलाकर पूछा। "विन्ध्येश्वरी बाबू उठे "होगा कोई, गाँठ का पूरा अक्ल का अन्धा।" उन्होंने कहा

"अब छोड़ो तुम इस तरह खटना। प्रेम की बारी है अब" विन्ध्येश्वरी बाबू हँस पड़े। "कमाने तो दो पहले उसे"

"कमायगा ही"

"और वह कमाई, लोगी तुम, या तुम्हारी बहू। मुझे थोड़े हिस्सा मिलेगा उसमें से" कहते-कहते वे नीचे उतर गये,

केतकी सोचने लगी, मन-ही-मन उस दिन की कल्पना करने लगी जब प्रेम कमाई लाकर उसे देगा, और वह कहेगी, बहू को दो, वह लजायेगी, तब वह स्वयं बहू को बुला कर कहेगी, लो बहू, तेरी चीज है, तू ही सँभाल।" काल्पनिक दृश्य उसके सामने सजीव हो उठा। वह मुग्ध होगई अपनी ही कल्पना पर....

विन्ध्येश्वरी बाबू आये, धीरे-धीरे निष्प्राण से हाथ में तार का कागज—

"कौन था?" केतकी ने पूछा, फिर तार देखा घबड़ा उठी, बैठकर बोली, "क्या है?" विन्ध्येश्वरी बाबू चुप रहे।

"कहाँ से आया है, झाँझा से?" व्यग्र होकर केतकी ने पूछा, उसकी जान गले तक आ गई थी।

"कुशल है न ?"

पैशाचिक हँसी हँस कर विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा "हाँ कुशल है...' केतकी और डर गई।

"प्रेम..."

"प्रेम, राधा नाम की नर्स के साथ भाग गया है" विन्ध्येश्वरी बाबू ने उत्तर दिया।" नाम उज्ज्वल कर दिया तुम्हारे सपूत ने ! हा हा हा"

केतकी के पांव लड़खड़ा गये, धम्म से बैठ गई वह, कंठ से एक शब्द भी नहीं निकला।

"शाबाश बेटा !" विन्ध्येश्वरी बाबू कह रहे थे, पढ़ लिख कर महान सत्यकर्म कर बैठे—वंश कीर्ति अमर कर दी।

'बस करो !' केतकी ने चिल्लाकर कहा, 'बस करो' वह सिर पटकने लगी धरती पर, यही सुनना बाकी था, हे राम !

रात ज्यों-त्यों कटी सुबह केतकी ने कहा, "मैं जाऊँगी झांझा..."

"जाकर क्या करोगी ?"

"प्रेम"

"नाम मत लो उस का !" गर्जकर विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा, "पैदा होते ही मर जाता तो यह दिन तो न देखना पड़ता !"

केतकी तड़प उठी, "उसकी अशुभ कामना मत करो," उसने जोर से कहा, 'मेरा लड़का बड़ा सपूत है, जीवन का धन है।' विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा, 'और भेजो उसे लड़की पसन्द करने।' विलायती ढंग ही अपनाया था, तो उस ने पूरी तरह से अपनाया। अब रोती क्यों हो ? आनन्द मनाओ, तुम्हारी शिक्षा उस ने पूरी की।"

किन्तु परस्पर का यह झगड़ा कब तक चलता ? आखिर तै हुआ कि विन्ध्येश्वरी बाबू जायें झांझा, दूसरे दिन सब कामों

से छुट्टी ले विन्ध्येश्वरी बाबू रवाना हुए।

झाझा पहुँच, उन्होंने सारा हाल सुना, यह भी सुना कि उसके दूसरे दिन प्रेम आया था, लेकिन शकुन्तला ने तो बात ही नहीं की थी, लाचार हो उन्होंने मीना को बुलाया सिर ढांके, सकुचाती मीना ने आकर प्रणाम किया।

"सुखी रहो' विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा, लज्जा से उन का सिर नहीं उठ रहा था। इसी सुन्दर प्रतिमा को छोड़ प्रेम नर्स के साथ भाग गया?

मानिक बाबू ने मीना से कहा—"बेटी जो पूछें बता दे।" वे स्वयं उठ कर चले गए।

"प्रेम कहां है। जानती है बेटी।" विन्ध्येश्वरी बाबू ने पूछा।

"हाँ यहीं है।"

"और—और वह?" राधा का नाम लेते भी उन्हें घृणा सी लग रही थी।

"वे भी।

"हूँ तुम्हें मालूम है कि—अब क्या इरादे हैं उसके" मीना चुप रही।

"बोल बेटी! संकोच न कर, तू पढ़ी लिखी है। समझदार है—जान बूझकर तू ने क्यों यह होने दिया? हमें खबर कर देती....अपनी माँ से कह देती।" विन्ध्येश्वरी बाबू के स्वर में उलहना सा था।

मीना ने सिर उठाया—"उस से फायदा क्या होता?" "हम संभाल लेते।" मीना चुप न रह सकी!" संभालने की कोई जरूरत नहीं थी। वे समझदार थे—उन्होंने जो ठीक समझा किया।

"ठीक समझा? यही बेशरमी ठीक समझी? क्रोध से

विध्येश्वरी बाबू के नथुने फड़कने लगे।"

"बेशरमी कौन-सी ?"

"यह उसे ले भागना।"

"गलत मत समझिये राधा बहन को। रात में, वर्षा में, निकाल दिया गया था। वे क्या करते? क्या उन्हें खोजने जाना भी शरम की बात थी। या उस घोर रात को उन्हें मरने छोड़ देना शरम की बात होती ? आप ही सोचिये।" मीना का स्वर दृढ़ था, "उन्होंने ठीक किया, कम-से-कम अपनी नजरों में तो उन्होंने अपना सम्मान बनाये रखा, और मेरी नजरों में भी।" मीना की आवाज धीमी और अस्पष्ट हो गई—"उन्होंने ठीक किया।"

"तू भी यह कहती है ?"

"हाँ।"

"और इसी लक्ष्मी को छोड़ा है उस निर्लज्ज ने।" विन्ध्येश्वरी बाबू ने जोर देकर कहा।

"आप ने राधा बहन को देखा नहीं है, नहीं तो ऐसा न कहते। उन के सामने मैं क्षुद्र हूँ।"

"यह तेरी महत्ता है।" विन्ध्येश्वरी बाबू उठ खड़े हुए, "मैं लाता हूँ उसे पकड़ कर, क्षमा कर देना उसे, बेटी! मैं बूढ़ा उसके बदले तुझसे क्षमा माँगता हूँ ?"

मीना ने सिर उठाया, विन्ध्येश्वरी बाबू की ओर देखा। आँखों में छलकते आँसुओं को बरबस रोका और बोली— 'अगर वे उन्हें छोड़ कर चले आये तो क्षमा कभी न कर सकूँगी।" इतना कह, वह मुँह आँचल से ढाँप, हट गई। शंकित, विमूढ़-से विन्ध्येश्वरी बाबू खड़े रह गये।

"क्या पढ़-लिख कर सब की मत मारी जाती है ?" उन्होंने सोचा।

खोज-खोज कर पता लगा उन्हें प्रेम के बासे का। अकेले जाने का साहस न कर सके, विन्ध्येश्वरी बाबू, मानिक बाबू को साथ ले, वहाँ पहुँचे। छोटा-सा, गन्दा-सा घर, घृणा से नाक भौं-सिकोड़ते हुए उन्होंने किवाड़ खट-खटाया।

राधा बैठी थी। प्रेम को गये एक रात ही तो गुजरी थी, शायद शीघ्र लौट आये हों, वह ठीक से सोच न सकी। लपक कर उठी और किवाड़ खोल दिया। किवाड़ खुलते ही द्वार पर खड़े सज्जनों को देख, उस का चेहरा सुर्ख हो गया। जड़वत् खड़ी रही। मानिक बाबू को पहचानती थी वह, और प्रेम के चेहरे से समानता होने के कारण समझ गई कि दूसरे सज्जन कौन हैं। घूँघट निकाल उसने प्रणाम किया, फिर एक ओर हट कर चुप खड़ी रह गई। विन्ध्येश्वरी बाबू की आँखों से निकलती घृणा उसे स्पष्ट दीख रही थी।

उसे प्रणाम करते देख, 'विन्ध्येश्वरी बाबू पीछे हट गये थे, मानिक बाबू छड़ी हिलाते दूसरी ओर देख रहे थे।

कुछ क्षण यों ही बीते, आखिर विन्ध्येश्वरी बाबू ने पूछा, "यही है?" मानिक बाबू ने सिर हिला कर जताया—"हाँ।" "प्रेम कहाँ है?" कर्कश स्वर में पूछा विन्ध्येश्वरी बाबू ने। मानिक बाबू सकुचित हो उठे, "यहाँ सड़क पर सीन मत कीजिये।" उन्होंने कहा, "चलिये भीतर," राधा ने रास्ता छोड़ा। दोनों भीतर चले गये, पर बैठे नहीं।

मानिक बाबू ने चारों ओर देखा। पूछा—"प्रेम कहाँ है, राधा?" राधा को उत्तर देना ही पड़ा। उस ने धीरे से कहा, "गये हैं?"

"कहाँ?"

"घर।"

"कौन मुँह ले कर घर गया है?" विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा।

कुछ उत्तर न पाने पर उन्होंने फिर पूछा, "क्या चाहती हो उस से तुम ?" राधा चुप रही। मानिक बाबू ने आँखों-ही-आँखों में विन्ध्येश्वरी बाबू को रोका, फिर राधा से पूछा।

"राधा! प्रेम का क्या निश्चय है? तुम से विवाह करेगा वह ?' राधा सिर झुकाये खड़ी रही—"लेकिन समझती हो, तुम उसका अर्थ क्या होगा? समाज द्वारा त्याग, माँ-बाप द्वारा त्याग।" राधा काँप उठी, मानिक बाबू ने फिर कहा, "जीवन-भर लांछना, निन्दा, अपमान, क्या तुम्हारी यही इच्छा है।"

सिर हिला राधा ने अस्वीकृति जताई।

"तब, तब तुम क्यों उसे बाँध रही हो? तुम समझदार हो, क्या यह नहीं समझ सकती हो कि तुम से विवाह करने का परिणाम क्या होगा ?"

"क्या ?" राधा ने आहिस्ते से पूछा।

"अभी तो बताया तुम्हें," विन्ध्येश्वरी बाबू जल्दी-जल्दी बोल रहे थे, "मैं तो उस का त्याग कर ही दूँगा।"

"क्यों ?" प्रश्न सुन उन्हें राधा के साहस पर आश्चर्य हुआ।

"क्यों ?...तुम कौन जात हो? माँ-बाप कौन हैं ?" उत्तर न पा, "तुम चुप हो, यानी उत्तर ऐसा नहीं जिस में तुम्हारी मर्यादा बचे, तब भी पूछती हो—'क्यों ?' समाज के बीच रहना है। अज्ञात कुलशीला स्त्री, वह भी नर्स, को वधू बना क्या हम समाज में रह सकेंगे।"

"तुम उसे प्रेम करती हो ?" मानिक बाबू ने पूछा। राधा ने सिर उठा उन की ओर क्षण-भर देखा। "हाँ" उसने धीरे से कहा।

"बहुत अधिक? अपने से ज्यादा ?" राधा ने उत्तर नहीं दिया। सिर्फ एक दफे उन की ओर देखा, उन की आँखों में ही

उत्तर दिया। मानिक बाबू बोले, "तब सोचो, तुम्हारा संसर्ग प्रेम के लिये कितना घातक होगा।"

"यह मत समझो कि मैं अपनी बेटी का ख्याल करके कह रहा हूँ, मेरे लिए तो तुम भी उस से कम नहीं, लेकिन प्रेम के लिए ही उसी का ध्यान करते हुए मुझे कहना पड़ता है। तुम से विवाह करना उस के लिए हानिकारक होगा।"

"वह डाक्टर है, जिस डाक्टर की इज्जत नहीं वह असफल होता है, जानती ही हो। समाज में इज्जत मुख्य होती है, जो जीवन जन-सेवा में लगा सकता, वह जीवन इज्जत न रहने के कारण निष्फल जायगा," मानिक बाबू राधा के कोमल स्थान को जानते थे, उन्होंने वहीं चोट की, "क्या तुम चाहती हो कि अपने स्वार्थ के आगे, तुम जन-सेवा का बलिदान कर दो?"

राधा तड़प उठी। "नहीं" उस ने कहा।

"लेकिन तुम से विवाह का अर्थ तो यही होगा, घर से अलग, उस माँ से अलग, जिसे वह प्राणों से अधिक मानता है; इस बाप से अलग जिस की आँखें कमजोर हो रही है, क्या तुम्हारा प्रेम इतना स्वार्थी है कि तुम बूढ़े बाप से उसकी आँखों की ज्योति भी ले लो?

राधा काँप रह थी, चेहरा सूख गया था, अस्फुट स्वर से उस के मुँह से निकला, "नहीं।"

"तुम कहती हो कि तुम उस से प्रेम करती हो। मैं मानता हूँ तुम्हारी बात। लेकिन सोचो तो, उस की भलाई किसमें है? क्या तुम्हारा प्रेम वास्तव में गहरा है? क्या उस की भलाई के लिए कुछ नहीं करना चाहती? यही तुम्हारा प्रेम है?"

"बस करें," राधा ने कहा, "कहिये, क्या चाहते हैं आप?" उस का दम घुट रहा प्रतीत होता था।"

"उसे छोड़ दो," विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा, "उसे मुक्ति

दो, तुम्हें किसी तरह का नुकसान न होगा, जो कहो हम करने को तैयार हैं।" घृणा से राधा के नेत्र जल उठे। लज्जा-संकोच को त्याग उस ने विन्ध्येश्वरी बाबू की ओर देखा।

"आप गुरु जन हैं, पूज्य हैं। आपको कुछ कहना धृष्टता होगी। लेकिन, आप ने मुझे क्या समझा है? क्या आप समझते हैं कि आपके पुत्र को मैंने धन के लालच में आकर चाहा? आप के धन पर मैं थूकती भी नहीं। मुबारक हो वह आपको।" विन्ध्येश्वरी बाबू उस की आँखों का तेज देख कर सहम गये।

मानिक बाबू ने उसे शान्त करने के लिए कहा, "यह बात नहीं राधा। मतलब यह था कि अगर तुम्हें तुरन्त कोई असुविधा हो तो...,"

"मुझे कोई असुविधा नहीं।" राधा ने दर्प से कहा। "आप निश्चिन्त रहें, मैं चली जाती हूँ," विन्ध्येश्वरी बाबू की ओर मुड़कर, "आप के रुपये के लिए नहीं, उन की भलाई के लिए, वे सुखी रहें, जन-सेवा करें, अपने स्वार्थ के लिए, उन के जीवन में बाधा नहीं बनूँगी," वह रो पड़ी। "क्या एक पत्र भी नहीं लिखने दीजियेगा उन्हें?" उस ने पूछा। मानिक बाबू का हृदय भर आया। उन्होंने कहा "जो पत्र दोगी, उसे मिल जायेगा।" राधा चली गई भीतर, कुछ देर में एक बन्द पत्र लेकर आई, मानिक बाबू के हाथ में रख दिया, बोल न सकी कुछ भी।

मानिक बाबू ने करुणापूर्वक उस की ओर देखा। बोले, "बेटी राधा!" पहले-पहल उसे बेटी कहा था उन्होंने, राधा ने छल-छलाई आँखों से उनकी ओर देखा।

"हम से घृणा कर तू, हम क्षुद्र हैं, पर, अगर कभी भी तुझे सहायता की जरूरत हो, तो इस क्षुद्र व्यक्ति को न भूलना। तेरी सहायता करना, किसी भी काम आना, मैं अपना धन्य-भाग्य समझूँगा।" उन्होंने राधा के सिर पर हाथ रख दिया,

"भगवान् तुझे इस महान त्याग का फल दे," राधा ने प्रणाम किया मानिक बाबू को, विन्ध्येश्वरी बाबू को भी, फिर भीतर चली गई।

वे दोनों भी लौट आये।

मीना ने सब हाल सुना, क्रोध से फड़कने लगी वह। मानिक बाबू से बोली, "यह अन्याय है। प्रेम की दुहाई देकर बेचारी को ठग लिया आपने? देखूँ तो कौन उसे निकालता है? मैं यहीं ले आती हूँ उसे," जब तक कोई रोके, वह सड़क पर थी।

किन्तु, उसने वह घर बन्द पाया, राधा चली गई थी। उसने देखा, स्टेशन पर गाड़ी खड़ी है, वह लपकी उधर, किन्तु पहुँचते-पहुँचते गाड़ी खुल चुकी थी।

वह लौट आई। "जान ले ली आप लोगों ने मेरी बहिन की।" उसने कहा। दोनों व्यक्ति सिर झुकाये बैठे रहे। उन्हें अपने कार्य पर लज्जा आ रही थी।

"और उपाय ही क्या था?" मानिक बाबू ने आत्म-तुष्टि के लिए कहा।

"हाँ, मरता क्या न करता?" विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा।

प्रेम घर पहुँचा। पहुँचा तो सुबह ही, परन्तु पाँच-छः घण्टा इधर-उधर भटकता रहा। विन्ध्येश्वरी बाबू कचहरी चले जायं, माँ अकेली हो तभी जाकर माँ से भेंट करे। यही विचार था उसका। बारह बजे जब वह घर पहुँचा, घर का किवाड़ खोल दबे पाँव भीतर गया। देखा—उसकी माँ चारपाई पर बैठी है। सामने रामायण रखी है। किन्तु माँ घुटने पर कोहनी रखे, हाथ पर माथा धरे उदास, खिन्न बैठी है। चेहरा सूख गया है, आँसू के चिह्न दिखाई दे रहे हैं।

प्रेम का हृदय अनुताप से भर गया। अर्ध रोने के स्वर में उस ने पुकारा, "माँ!" केतकी चौंककर खड़ी हो गई। प्रेम को देख उस ने आर्त स्वर से कहा—"बेटा प्रेम!" दोनों हाथ फैलाये वह आगे बढ़ी। रामायण पैर की ठोकर से लुढ़क गई। इस का ध्यान ही न रहा उसे। प्रेम दौड़ कर माँ के चरणों पर गिरने लगा लेकिन केतकी ने उसे भुजा-पाश में बाँध लिया था।

"बेटा!" उस ने फिर कहा, "सब झूठ था न बेटा?" प्रेम ने अपने को बाहों से छुड़ा लिया। अलग हटकर खड़ा हो गया।

"क्या, माँ !" उसने कुंठित स्वर में पूछा।

"वही सब, उस दाई के साथ...." वह स्वयं लाज से बात पूरी न कर सकी। प्रेम ने सिर झुका लिया था। केतकी ने देखा। करुण स्वर में पूछा—"क्या बात है बेटा ! नहीं कहेगा मुझसे ?"

"तुम से नहीं कहूँगा माँ, तो इस दुनिया में कहूँगा किससे ?" प्रेम ने कहा।

और तब धीरे-धीरे केतकी ने, खोद-खोद कर सारा हाल सुना। प्रेम ने कुछ नहीं छिपाया।

सब सुन केतकी शान्त स्थिर बैठी रही। प्रेम वहीं सिर झुकाये बैठा था। माँ की ओर देखने की हिम्मत भी न थी उसमें। न जाने माँ के चेहरे पर वह क्या पाये—अस्वीकृति या क्षमा ?

जब चुप्पी असह्य हो उठी तो उस ने धीरे से पुकारा—"माँ ?"

केतकी जैसे स्वप्न से जगी।

"लेकिन बेटा, समाज...तेरे पिता जी....?"

"यह सब मैं नहीं जानता माँ, तुम क्या कहती हो ?"

"मैं, मैं मूर्खा स्त्री हूँ...मेरे कहने का क्या मूल्य ?"

"और किसी के लिए न हो, मेरे लिए तो बहुत ज्यादा है, तुम जानती हो।"

"अगर मैं भी विरोध करूँ तो...." केतकी ने पूछा। प्रेम छटपटा उठा, "नहीं माँ ! तुम, तुम ऐसा न कहो।"

"लेकिन अगर कहूँ तो ?"

"तो तुम्हीं ने तो शिक्षा दी है माँ, कि हृदय जिसे स्वीकार करता हो, उस कार्य को करने में हिचकना आत्म-प्रवंचना है, पाप है।"

केतकी का हृदय फूल उठा।

"नहीं बेटा," उस ने कहा, "तुम्हारी माँ हूँ। तुम्हें मैंने ही बनाया है। अब तुम्हें आत्मा को धोखा देने के लिए नहीं कह

सकती। पर अगर तुम पहले मुझे लिख दिये रहते तो यह घटना क्यों घटती, मैं सँभाल लेती।"

"अब ?"

"अब क्या ? तुम्हारे पिता गये हैं झाझा" प्रेम चौंका। "वे लौट ही आयंगे कल तक, अभी तार दिला देती हूँ। अगर न भी माने, तो बेटा मैं तो माँ हूँ। बेटे-बहू को नहीं छोड़ सकती।"

तार दिया गया। इतना ही "—प्रेम आ गया।" बस...

केतकी ने चुपके-चुपके रुपये निकाल कर रख लिये थे। अगर विन्ध्येश्वरी बाबू न माने तो...प्रेम की डिस्पेन्सरी खोलने का खर्च तो वह देगी ही और राधा के लिए कपड़े इत्यादि...

प्रेम काँपते हृदय से पिता के आने की राह देखने लगा। तीसरे दिन ही वे लौट आये। प्रेम ने उन का आना देखा और भागकर अपने कमरे में छिप गया। उस का हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। जिस की आवाज उसे साफ सुनाई दे रही थी।

विन्ध्येश्वरी बाबू उस के दर्वाजे पर रुके। द्वार खोल भीतर एक पत्र फेंक दिया। और बिना एक शब्द बोले चले गये। प्रेम का चेहरा सूख गया था, उन की पगध्वनि सुनकर।

उस ने एक निश्वास छोड़ी बचने की, और वह पत्र उठाया। राधा की लिखावट चीन्हता था। उसे देखकर चौंका। बाबू जी को कहाँ से मिला यह। क्या उन्होंने राधा से भेंट की है ? जल्दी-जल्दी उस ने पत्र खोला। पढ़कर सन्न रह गया। पत्र थामे—आँखें पत्र पर लगी, लेकिन दृष्टि दूर—बहुत दूर। पत्र छोटा-सा ही था।—

"मेरे देव,

मैंने बहुत सोच-विचार के बाद यही समझ पाया है कि मेरा संसर्ग तुम्हारे जीवन में घातक सिद्ध होगा, मेरे कारण तुम लांछित होओ, यह मैं नहीं सह सकूंगी। तुम अपने व्रत से

मत डिगाना। जनसेवा ही मानव का सर्वोच्च धर्म है, और मैं तुम्हारे उसी धर्म में बाधक होती....मेरे कारण तुम्हें देवी-सी माँ तथा पिता का त्याग करना पड़ता—मेरे कारण, मेरे तुच्छ प्रेम के कारण। मैं इस लायक नहीं कि मेरा मूल्य तुम इतना अधिक दो। मैं जाती हूँ। मेरी खोज न करना। मैं जहाँ रहूँगी, तुम्हारी ही रहूँगी और तुम्हारी शुभकामना करती रहूँगी। मुझे क्षमा करना, भूल जाना।

तुम्हारी ही

राधा"

'बस इतना ही तो।' प्रेम के हृदय में एक ज्वाला उठी 'कैसे यह पत्र लिखवाया गया उससे? किस दबाव से?' उस के मन में आया कि जाकर पिता से पूछे, किन्तु लाभ? वह तो गई, अब क्या उसे पायेगा फिर वह? दुनिया अन्धेरी हो गई थी।

कब तक वह बैठा रहा, उसे ज्ञात नहीं। उस की तन्द्रा टूटी केतकी के आने पर। वह सब हाल सुन चुकी थी। प्रेम के चेहरे को देख वह समझी कि कार्य अच्छा नही हुआ—विवर्ण, पांडु चेहरा, जो पहले खिले कमल-सा था। मातृ-हृदय रो उठा, उसने पास आ, धीरे से वह पत्र लिया, प्रेम ने आपत्ति नहीं की।

उसे पढ़, केतकी की आँखें भर आईं। अज्ञाता राधा के प्रति उस का प्रेम उमड़ आया। वह सचमुच आदर के योग्य थी।

"प्रेम!" उस ने उस के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"माँ!" प्रेम का व्यथित, प्रतिस्वर सुन केतकी का हृदय विदीर्ण होने लगा। "हाँ बेटा।"

किन्तु प्रेम बोल न सका। बच्चों की तरह माँ के आँचल में

मुँह छिपाये, बैठा रहा। दो-चार आँसू निकले भी—हृदय को जलाते! स्त्रियों के आँसू ठंडे होते हैं। निकलते हैं तो मन हल्का कर देते हैं, परन्तु पुरुष के आँसू जब निकलते हैं तो अपना रास्ता जला कर मानो गले हुए सीसे के हों। केतकी ने जबर-दस्ती प्रेम का सिर उठाया, उस की लाल आँखें देखीं, उन्हें पोंछ कर बोली—"छिः बेटा, मर्द होकर रोते हो? उसे देखो, कितनी हिम्मत से पत्र लिखा है उस ने, और तुम? इतने विचलित हो गये? शान्त होओ, वह मिलेगी जरूर, अगर तुम उस के लायक बन सके तो।"

राधा घर से निकल कर सीधी स्टेशन की ओर गई। दो-चार रुपये थे उस के पास, और भाग्यवश उसे गाड़ी भी मिल गई तुरन्त ही, वह गाड़ी में बैठ गई। कहाँ जाय यह अनिश्चित था। उसका मन कुछ सोचने लायक़ था नहीं, विचारधारा जमती ही नहीं थी।

उसे तब होश हुआ जब कि उस ने टिकट चेकर को आते देखा। वह घबरा कर गाड़ी से उतर गई।

तब उस ने सोचा वह घर ही जायेगी—सुलतान गंज, घर! उफ, वह 'घर' था उस का? और बूढ़ी—काकी कहती थी उसे, वह—राधा स्मरण-मात्र से ही सिहर उठी। लेकिन चारा क्या था? मजबूरन वह जा रही थी उसी स्थान पर जहाँ के अत्याचारों से ऊब कर वह भागी थी। पत्ती घायल था, आश्रय के लिए स्थान ख़ोज रहा था।

राधा के जीवन में वह घर ही तो उस का अपना घर था। उस की वह काकी ही तो उसे आश्रय दे सकती थी।

सन्ध्या हो रही थी, जब राधा ने उस घर में प्रवेश किया। उस ने देखा—घर पहले से भी अधिक उजाड़-सा है, छप्पर टूट

रहा है, दीवारें धँस गई हैं, उस के मनमें उस निर्जीव घर के प्रति ममता उमड़ आई।

वह भीतर गई। देखा—उसकी काकी, वृद्धा तो पहले ही थी, अब और भी झुक गई है, केश पक गये हैं, बैठी है रसोई घर के सामने, बड़बड़ा रही है आप-ही-आप।

और एक ओर ओसारे में बैठी है एक युवती, राधा उसे चीन्हती नहीं थी। काकी का दूर के नाते का भतीजा था कोई, शायद उसी की स्त्री होगी। जगत, वह लड़का, राधा का परिचित था; जमालपुर कारखाने में काम करता था; एक नम्बर का अवारा था वह; रहता था बरियारपुर में; यहाँ कैसे कब आया?

राधा खड़ी-खड़ी यह सोच ही रही थी कि पीछे से उसे जगत का स्वर सुनाई पड़ा।

"कौन है?" आवाज सुन राधा चौंक पड़ी। और बुढ़िया का ध्यान भी उधर आकर्षित हुआ। उस ने भी अन्धकार को भेदने की चेष्टा करते हुए पूछा—"कौन?"

"मैं हूँ राधा।" काँपते स्वर में राधा ने कहा। अपने स्वागत के रूप की भावना से वह डर रही थी। किन्तु उस की आशंका के विरुद्ध बुढ़िया ने उठकर उत्साह से उसका स्वागत किया।

"राधा! आ बेटी!" बुढ़िया के सीने में मुँह छिपाये राधा रो पड़ी।

बाद में, ए बुढ़िया ने उसे बैठाया—उस युवती को पुकारकर कहा—"ए कनिआइन, पानी ला दे।"

युवती उठी, राधा के पास आई, सिर से पैर तक उसे देखा। राधा ने भी देखा—सविली-सी, नुकीली मुँह, उभरी ठोड़ी, दुबली-पतली। रुग्णा-सी लगी उसे वह।

व्यंगात्मक स्वर में उसने कहा "ननदजी दुनिया से मन

मर गया ?" कर्कश-सा स्वर, राधा शर्मा गई, व्यंग का लक्ष करके।

जगत भी आकर बैठ गया था। उस ने पूछा—"कैसे याद पड़ गई हम लोगों की ? यह घर तो तुम्हारे लायक न था ?"

बुढ़िया ने तीखे स्वर से रोका। "थकी-माँदी है अभी, तंग न करो।" फिर राधा की ओर मुड़ी—"ऐसे ही आई है बेटी ?"

"हाँ।"

"सामान वगैरह कुछ नहीं ?"

"ना" बुढ़िया समझ गई कुछ रहस्य होगा। वह चुप कर गई।

रात को बुढ़िया ने उस से सब हाल सुना। राधा ने जितना चाहा उतना बता दिया। वह काम छोड़कर, लड़कर आई है। इसी लिये समान छोड़ आई है। बुढ़िया चुप रही।

तब राधा ने पूछा, उत्तर स्वरूप बुढ़िया ने उसे बताया गत दो तीन वर्षों का इतिहास कैसे एकाकीपन से ऊब, उस ने जगत को बुला लिया था—जगत् के माँ बाप परसाल मर गए थे। इसी लिये वह स्त्री-सहित यहाँ रहने लगा था।

उसकी स्त्री परबतिया। बड़ी लड़ाकी थी। बुढ़िया ने उसकी खूब शिकायत की। राधा अब समझी कि क्यों उस का इतना आदर किया था बुढ़िया ने, सहायक पाना चाहती थी वह, लेकिन राधा अभी उसकी ओर से निश्चिन्त न हो पाई थी।

कहीं फिर उस के जरिये से कमाने की इच्छा से बूढ़ी आवारों को बुलावे ? तीर्थस्थान था, धर्मशाला के समीप ही घर, आवारे नौजवान आते ही रहते थे, जरा-सा प्रोत्साहन, राधा पर आफत आ ही जाती।

लेकिन बुढ़िया ने उसकी वह आशंका दूर कर दी—"पुराने दिन भूल जा बेटी, तुझे कितना समझाया, तू न मानी। अभी

रानी बनी होती खैर, अब कुछ नहीं कहती हूँ, जो चाहे सो कर, लेकिन मैंने तुझे पाला-पोसा है, याद रखना।" उस की आँखों से आँसू गिरने लगे— "परबतिया क्या आई, मेरी जान खाने पर लगी रहती है।" उस ने कहा। "समझती है कि मैं उस के आदमी की कमाई खाती हूँ। हमारे घर में रहता है, उस का जरा भी ख्याल नहीं। दो रोटी खा लेती हूँ तो पहाड़ हो जाता है। अब तो बेटी कमा भी नहीं सकती बूढ़ी हुई..."

राधा ने आश्वासन देते हुए कहा—"कोई चिन्ता मत करो काको—भगवान् पार लगायेगा ही।"

लेकिन भगवान इतनी जल्दी फुरसत नहीं दे देते। यह बात राधा पर दूसरे ही दिन स्पष्ट हो गई।

आते-जाते उसे परबतिया के वाक्य-बाणों का सामना करना पड़ता। वह नर्स थी, और वह पेशा हेय था, खास वजह यही थी। फिर वह कमाती नहीं थी, जगत की कमाई खाती थी, दूसरा कारण यह था। तीसरा कारण, वह सुन्दर थी और परबतिया उसके सामने कलूटी-सी।

राधा ने निश्चय किया वह स्वयं खाने-भर को कमायेगी—चक्की पीसकर ही सही। और तब, कुछ रुपया हो जाने पर फिर नौकरी कर लेगी।

उस ने काकी से कहा। "काकी कहीं से पिसाई-उसाई का प्रबन्ध करो न, खाली बैठी रहती हूँ कुछ काम ही करूंगी।" बुढ़िया भी तानों से आजिज आ चुकी थी, बोली "हाँ बेटी, मैं छाँट-ऊँट दूँगी, पीस तो नहीं सकूँगी।" राधा ने उत्तर दिया—"मैं पीसूगी। तुम लाओ न।" और राधा ने पीसना शुरू किया अपने घर पर ही। हलवाइयों की दूकानें थीं। आटा पीसने का काम था ही। राधा करती। अपने खाने भर को कमा लेती।

किन्तु परबतिया से यह भी न देखा जाता था। वह फिर

भी जली-कटी सुना ही देती। गंगा से पानी लाना राधा के जिम्मे पड़ा, घर लीपना-पोतना भी उसी के सर—वह चुपचाप काम करती। मेहनत छोड़े कई दिन हो गये थे, अभ्यास टूट चुका था। पस्त हो जाने से फिर भी साँस बटोर काम करती।

जगत का द्वेष-भाव कम हो गया था। कभी-कभी बीड़ी-तमाखू के लिये राधा से पैसा भी माँग लेता था—जब परबतिया नहीं देती थी तब, अपनी कमाई तो वह पार्वती ही को दे देता था।

इतना ही नहीं। राधा की सुन्दरता मादक थी, जगत पर इस का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। वह राधा से घनिष्ठता बढ़ाने की चेष्टा करता, किन्तु राधा से प्रोत्साहन न पाकर वह रुक जाता था।

समय कटता जाता था। किन्तु राधा, चाहे कठिन मेहनत के परिणामस्वरूप हो या और किसी कारण से हो, सूखती ही जाती थी। बुढ़िया उसे फिर समझाती, लालच दिखाती, लेकिन राधा की आवेशपूर्ण मुद्रा देख डर जाती। अधिक जोर देने का साहस नहीं था उसमें, और अब, अब जगत-पार्वती भी तो थे, उन के लिहाज से भी वह कुछ कर नहीं सकती थी। और सब से अधिक राधा ही पार्वती के वाक्य—वाणों से बुढ़िया की रक्षा करती थी। यह सोचकर भी बुढ़िया उसे असन्तुष्ट नहीं कर सकती थी। राधा को कुम्हलाते देख कभी-कभी उपदेश दे देती, कभी पार्वती पर क्रोध उतारती, यही उसका क्रम था।

जगत भी पार्वती को डाँट देता, राधा को दुर्वचन कहने पर। पार्वती बेचारी राधा के आने के बाद से सब से अलग होती जाती थी। किस-किस से लड़ती? और स्त्री का जो सब से बड़ा सहायक होता है—पति, वही जब विरुद्ध हो जाय, तब वह

कर ही क्या सकती है ? मन-ही-मन कुढ़ती, कभी जगत को ताना मारती, कभी राधा को।

राधा सुनकर भी अनसुना कर देती। जगत भी सुनता, राधा की ओर देखता। राधा की नजर अगर मिलती भी तो वह सिर झुका लेती। और जगत समझता कि राधा शायद, उन गालियों को गाली न समझ, दूसरा ही अर्थ लेती है, इसलिये बुरा नहीं मानती वह अर्थ पूर्ण दृष्टि से उस की ओर देखती और वह समझता कि वह दृष्टि से आमंत्रण करती है। सच है, मनुष्य वही देखता है जो देखना चाहता है।

उस दिन पार्वती को ज्वर था। वह रसोई नहीं कर सकी थी। राधा जाने लगी, तो पार्वती ने रोक दिया। "हैं हैं, रसोई-घर में न जाइयो, छू जायेगी।"

"पानी लाती है तो नहीं छू जाती ?" बुढ़िया ने पूछा, "वह तो गंगा जल है।" लेकिन राधा के पाँव रुक गये थे, घायल हरिणी-सी वह बैठ गई।

जगत ने सुना तो पार्वती पर बिगड़ा।

"तुम खाना उस के हाथ का, ब्राह्मण की बेटी है न ? मैं खाऊँगा, क्या खाली पेट काम पर जाऊँगा ?"

उस ने राधा से अनुरोध किया, परन्तु राधा ने अलग, ओसारे पर रसोई बनाई, भंसा में नहीं।

जगत देर तक उस से बातें करता रहा, उस के मन से इस अपमान को भुलाने के लिये। जरा सहानुभूति थी, राधा भी उस की कृतज्ञ थी।

काकी सोई थी पार्वती के पास। राधा अपनी कोठरी में पड़ी सोच रही थी कि अब इस घर में उस के लिये स्थान नहीं, उसे जाना ही होगा, उस के आँसू न रुकते थे। तकिये में मुँह

गड़ाये, वह कब तक रोई उस का ध्यान उसे नहीं, वह सो गई रोते-रोते।

जगत लौटा था देर से। अगर कोई देखता उसे तो समझ जाता कि आज वह नशा पिये हुए है। किन्तु राधा तो अपनी धुन में थी। खाना परोसते समय उसे इतना ध्यान कहाँ रहा था कि इन बातों को देखती ? उसे खिला कर वह अपनी कोठरी में जा पड़ रही थी।

लेकिन जगत को नींद कहाँ ? वह अपनी खटिया पर पड़े-पड़े रह. रहकर मूँछ पर ताव देता, कभी इधर-उधर आहट लेता।

आधी रात को उठा, बुढ़िया के खर्राटे सुन उधर से निश्चिन्त हो गया। किन्तु फिर भी एक झाँकी मार ही ली, शायद पार्वती जागती हो ? वह भी सो रही थी। तब दबे पाँव वह राधा की कोठरी की ओर बढ़ा।

राधा की खटिया के पास खड़े, उस का हृदय काँपने लगा। लेकिन नशे ने उसे साहस दिया। उस ने धीरे-से पुकारा— "राधा।" कोई उत्तर न पा उस ने हाथ से टटोला, राधा के कन्धे पर हाथ पड़ा उस का, आहिस्ता-आहिस्ता उस ने राधा को पीठ के बल कर दिया। एक लम्बी सांस फेंकी राधा ने, वह दिन-भर के अथक परिश्रम के बाद, घोर निद्रा में थी।

जगत के हाथ उस के सीने पर थे। स्वाँस के साथ सीने का उठना-गिरना उसे स्पष्ट मालूम हो रहा था। उस की स्वाँस तेज हो उठी, वह भूल गया। उसे यह भी ख्याल न रहा कि राधा उसे भाई समझती आई है।

उस ने धीरे-धीरे अत्यन्त सावधानी से राधा की जाकेट के बटन खोले, मांसल स्तनों को आहिस्ते से सहलाया।

राधा की साँसें नियमित रूप से चलती रहीं।

जगत ने एक हाथ उस की कमर की ओर बढ़ाया, दूसरा हाथ छाती पर, किन्तु गाँठ खुली नहीं। जरा झटका दिया उस ने।

राधा चौंक उठी, कठिनता से मुँह तक आई चीख रोकी उस ने और भरपूर जोर से ठेला जगत को।

इस अचानक आघात को न सह सका जगत, गिरा, दीवाल से सिर टकराया उसका। वह चिल्ला उठा।

राधा बिछौने से उठ गई थी। क्रोध, आवेष, लज्जा से थर-थर कर रहा था उसका शरीर।

जगत की चीख ने काकी को जगा दिया था। वह दौड़ी हुई आई।

"नीच! पापी! निर्लज्ज!" राधा के मुँह से निकला "बहन थी मैं तेरी।"

बुढ़िया सब समझ गई थी। वह किं कर्तव्य विमूढ़-सी खड़ी रह गई।

लेकिन उसके पीछे ही पार्वती भी उठ आई थी—ज्वर से जलता था शरीर, परन्तु स्त्री का सन्देहपूर्ण हृदय, ईर्षा की आग, वह कैसे रुकती?

जगत तथा राधा को देख उस का क्रोध भी उमड़ा, परन्तु अब की राधा पर नहीं, जगत पर—"कमीना कहीं का! बहन पर कुदृष्टि?" उस ने कहा, और आगे बढ़ राधा का हाथ थाम लिया—"चल दाई यहाँ से....छि: छि:" यह जगत की ओर—और प्राय: राधा को खींचती हुई वह ले गई अपने बिछौने पर।

राधा के आँसू तक न निकल पाये थे। सूख गये थे वे भी, निष्प्राण-सी, वह पार्वती की छाती से सटी पड़ी थी। पार्वती पीठ सहला रही थी उसकी—"कोई डर नहीं है तुझे....देखूँ तो कौन मर्द का बच्चा तुझे हाथ लगाता है!" राधा के रुँधे कंठ से सिस-

कियाँ निकलीं—सूखी, हृदय-भेदी, लेकिन रो न पाई वह। जाने दो मुझे गंगा की शरण में"

"क्या असगुन बातें करती हो दाई ?" पार्वती ने कहा—"उस मुँह झरके के डर से जान दोगी ?" उँह...तुम कुछ परवाह मत करो, देख लूँगी उसे मैं।"

वही पार्वती, जो कि उस की शत्रु थी, तब से सखी बन बैठी। जरा देर के लिये उसे आँखों की ओट न होने देती। जगत अब दोनों से मुँह चुराता था। रात-गये लौटता। चुपचाप खाकर सो रहता, पार्वती से ताने सुनता अलग। तीनों स्त्रियाँ उस के विरुद्ध थीं। वह अपनी जलन मिटाता ताड़ी में, अवारागर्दी में। पैसा अब घर न लाता। राह में ही खर्च कर देता। पार्वती तथा राधा अपनी जीविका स्वयं चलातीं। एक शाम तीनों के खाने लायक कूट-पीस कर जमा कर ही लेतीं।

राधा इस अवस्था में उन्हें छोड़ कर जा भी न सकती थी। उसी के कारण तो यह अवस्था आई थी, और वह जाती भी कहाँ। अबला! उस पर सुन्दर और जवान! दिन काट रही थी किसी तरह, सूख कर काँटा हो गई थी।

सोचती, कई दफे—प्रेम को पत्र लिखे, फिर तुरन्त विचार आता—उन का जीवन नष्ट कर दूँगी। नहीं-नहीं, उसे मरना स्वीकार था, लेकिन उन के जीवन में बाधा बनना नहीं।

प्रेम के जीवन में एक आँधी आई थी, वह चली भी गई। जितनी तेजी से आई, उस से कहीं अधिक तेजी से गई। किन्तु प्रत्येक आँधी की तरह वह अपने चिह्न छोड़ गई थी—जैसे आंधी वृक्षों की शाखाओं को या घर के छप्पड़ों को उड़ा ले जाती है, वैसे ही प्रेम के चहरे का उल्लास, हृदय का आनन्द वह लेती गई थी। जीवन के प्रारम्भ में ही उस पर दुःख की छाया पड़ी थी। फलस्वरूप प्रेम अत्यन्त अन्तर्दृष्टा हो रहा था, बाह्य जगत का प्रलोभन हृदय से मिटा वह आन्तरिक कल्पना के लोक में बीते दिनों की स्मृति में ही मग्न रहता। उस के अस्तित्व को झाड़-झंखाड़ में वे कुछ दिन ही, कुछ क्षण ही, फूल बन कर खिले थे अब फिर कभी वह फूल खिलेगा कि नहीं ?

केतकी ने बिन्ध्येश्वरी बाबू को समझा दिया था। प्रेम से उस घटना का जिक्र भी उन्होंने नहीं किया। वे भूल-से ही गये उसे शायद, अगर वे प्रेम पर बिगड़ते, बकझक करते तो प्रेम को इतना गहरा धक्का न मिलता। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि राधा क्यों उसे छोड़ कर चली गई ? किस से प्रेरित होकर ?

माँ से भी वह राधा का जिक्र नहीं करता था। केतकी बेचारी

उसे देखती, निश्वास लेकर सन्तोष करती और कर ही क्या सकती थी ? हाँ, शकुन्तला से अलबत्ता अनबन हो गई थी उस की।

कभी-कभी वह विन्ध्येश्वरी बाबू पर बिगड़ जाती—"तुमने जल्दबाजी की।"

"तो क्या उस मेम को सिर पर चढ़ा घर ले आता।" वे बिगड़ कर कहते—"भूल जायगा कुछ दिनों में, मुझे भी ऐसा ही सूना लगता था, पर मैं तो सँभल गया। उस की शादी कर दो, बहू आयेगी, देखेगा तो उस मेम को भूल जायगा।"

"तुम दीदी को प्रेम नहीं करते थे," केतकी कहती।

"प्रेम ! प्रेम ! फालतू बकवास है वह सब। अरे घर-गृहस्थी चलाना है, एक साथी की जरूरत होती है। विवाह प्रेम से थोड़े होता है ? विवाह के बाद ही प्रेम हो जाता है। कम-से-कम भारत में तो अभी तक यही होता आया है।"

"प्रेम भी जबरदस्ती होता है कभी ? वह तो आन्तरिक चीज है, स्वतः उत्पन्न होता है।"

"आखिर प्रेम है क्या ?" विन्ध्येश्वरी बाबू झुँझला उठते—"लोग जरा से आकर्षण को ही प्रेम समझ गये हैं। जहाँ जरा-सा मन ढुलका, समझे कि बस, प्रेम हो गया। लगे मजनू बन तड़पने, खूब समझता हूँ मैं।"

"तब कुछ नहीं समझते तुम !" केतकी भी बिगड़ कर उत्तर देती—"प्रेम की हँसी उड़ाते हो। प्रेम का अनुभव किये रहते तो समझते। प्रेम वह न बुझने वाली प्यास है, जो कि जलाती है, परन्तु शीतल भी रखती है। वह मादकता है, जीवन का सार-रूप, प्रेरणा। तुमने तो सारा जीवन उलटी-सीधी दलीलें पेश करते बिताया। तुम क्या समझो प्रेम के महत्व को ?"

"तुम ने तो समझा है न ?"

केतकी झुँझला उठती, कहती—

"हाँ, समझा है। इसी लिये तो बेटे की अवस्था का अनुमान करती हूँ। तुम एक दिन घर नहीं आते तो मेरी जान निकलने लगती है। वहाँ वह मेरा फूल-सा बेटा!" कहते-कहते केतकी का कण्ठ रुँध जाता।

अपनी चर्चा सुन विन्ध्येश्वरी बाबू की सख्ती दूर हो जाती। वे कहते—"तो क्या करता मैं? तुम ही कहो, समाज में निन्दा होती या नहीं?"

"नहीं रहना है हमें समाज में। बेटे से बड़ा समाज होता है? देखते हो, खाना-पीना आधा रह गया, देह सूख कर काँटा हो गई।"

"अभी याद ताज़ी है, समय पाने पर भूल जायगा। तुम उस की शादी कर दो अब, सुन्दर-सी पढ़ी-लिखी लड़की देख कर"

"नहीं करेगा वह, मैं उसे जानती हूँ"

"जवान मैं भी था। क्या मैं उसके भाव नहीं समझ सकता?"

"तुम पुरुष हो।"

"और वह कौन है?"

"है तो पुरुष ही लेकिन हृदय उसका कोमल है स्त्री से भी, इतना ही नहीं, उस के कुछ भाव एकदम स्त्री-तुल्य हैं। वह भी तो एक ही दफे प्रेम कर सकेगा। विवाह के लिए जिद्द करोगे तो क्या जाने कुछ कर बैठे? देखते ही हो उसके रंग-ढंग? पागल-सा तो हो गया है, चिढ़कर भाग ही न जाय—" आशंका से केतकी सिहर उठती।

"तुम अपनी ही जिक्र किये जाती हो। मेरी बात मानकर चलतीं तो यह नौबत क्यों आती?"

"तुम्हारी बात मानकर नहीं चली, और अब चल भी नहीं सकूंगी" जरा अभिमान-भरे स्वर में केतकी कहती।

"तो मत चलो रानी, हुक्म ही करो।"

"हटो, यह सब अच्छा नहीं लगता। जवान बेटा विरह में व्याकुल है और इन्हें ये चोचले सूझते हैं।"

प्राय: प्रति पाँचवें-सातवें दिन एक दफे इस विषय पर बहस हो जाती—किन्तु निष्कर्ष नहीं निकलता कुछ भी।

तीन-चार मास गुजरे यूँ ही!

प्रेम को देखकर पहचाना नहीं जा सकता था, इतना बदल गया था वह! सारा दिन पढ़ने में लगा रहता वह, लिखने बैठता तो लिखता ही रहता। उस के लेख इत्यादि उस के नाम को साहित्य-जगत में फैला रहे थे, इस की उसे परवाह भी न रहती। लेख भेजकर निश्चिन्त हो जाता, देखता भी नहीं छपा या नहीं।

केतकी कभी-कभी उन लेखों में उस के हृदय की व्यथा को देख पाती। उस के हृदय में चलते संघर्ष का आभास उसे मिलता। माँ-बाप, या प्रिया, जीवन का कूल, या रक्षा करने वाले घेरे।

प्रेम के दिल पर नरेन्द्र की वह तुलना अमिट छाप बिठा गई थी। उस का मन करता नरेन्द्र से मिलने को, किन्तु तुरन्त उस के मानस-पटल पर वह चिह्न अंकित हो जाता—नरेन्द्र, राधा का हाथ पकड़े। और वह भूल जाता नरेन्द्र का वह दूसरा रुख—

एक दिन प्रेम की कविता छपी—स्थानीय एक साप्ताहिक में। मानो हृदय खोलकर रख दिया गया हो। केतकी ने पढ़ी और वह व्याकुल हो उठी। यही हाल रहा तो प्रेम कब तक जियेगा? उस ने सोच-विचार कर निश्चय किया। फिर प्रेम के कमरे में चली गई।

प्रेम पढ़ रहा था। कम-से-कम किताब सामने रखी थी। नजर कहाँ थी यह तो वही जाने। दोनों कोहनी मेज पर रखे, हाथों से ठोड़ी सँभाले। केतकी देखती रही, प्रेम बैठा रहा वैसे ही।

केतकी ने उस के कन्धे पर हाथ रखा, पुकारा—"प्रेम !"

प्रेम सिहर-सा गया। सिर उठा कर केतकी की ओर देखा, बोला—"माँ !"

"उसे खोजो बेटा..."

प्रेम उत्तर न दे सका।

"मिलेगी वह ?" उस ने पूछा।

"खोजो तुम।"

"फायदा ?"

"फायदा ? मेरे घर की बहू है। तुमने जब स्वीकार किया तो मैं क्यों न स्वीकार करूँगी ? रहे तुम्हारे बाबूजी, मैं मना लूँगी उन्हें। तुम खोज निकालो तो—"

प्रेम सकुचा गया। बोला—"मना किया था उसने।"

केतकी जोर से बोली—"मना किया था क्या सोचकर ? कि तुम्हारी भलाई कर रही है। उसे पता होता कि तुम्हारी भलाई रहने में ही है तो वह न जाती। तुम जाओ, खोजो उसे, मैं भेजती हूँ तुम्हें।"

"बाबूजी—"

"उन से मैं निबट लूँगी। तुम मेरा कहा मानो। जाओगे ?"

"हाँ।"

"अच्छी बात है, तैयारी कर लो—कल ही चले जाओ।"

अन्धा क्या माँगे—दो आँखें !

केतकी ने रात को विन्ध्येश्वरी बाबू से कहा—"देखते हो, प्रेम कितना रोगी हो रहा है ?"

"तो क्या करूँ ?"

"उसे घूमने भेज दो। महीना-दो महीना घूम ले, तब तक मैं लड़की खोजती हूँ उस के लिए। इधर-उधर घूमने से उस का मन बदल जायगा, तब विवाह में आपत्ति नहीं करेगा।"

विन्ध्येश्वरी बाबू तुरन्त तैयार हो गये। सुबह ही उन्होंने प्रेम से कहा—"प्रेम, बहुत पढ़ चुके अब कुछ दिन आराम करो। घूमो इधर-उधर। आखिर प्रेक्टिस करोगे। स्थान भी चुन लेना अपने लायक"

प्रेम को अवसर मिला, वह चल दिया।

चलते समय केतकी ने पूछा—"उसे खोज लोगे तो मुझे क्या दोगे ?"

"जो कहोगी।"

"मैं तो उसे ही ले लूँगी।"

"अच्छा।" प्रेम ने जरा हँसकर कहा।

"और उस के बाद तुम मेरा कहा मानोगे न ? किसी तरह की दुविधा तो नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

"रही बाजी— "

"हाँ, रही बाजी।"

"मिल गई तो वह मेरी। तुम्हारा अधिकाकर नहीं रहेगा उस पर।" कहते-कहते केतकी ने विदा दी थी।

प्रेम देर तक, जब तक कि माँ दिखाई देती रही, उसी ओर देखता रहा। जब गाड़ी दूर निकल गई तो मन-ही-मन बोला 'कितनी विशाल-हृदया है उसकी माँ...'

जब से राधा गई थी, मीना ने अपनी जीवन-चर्या ही बदल दी थी। चंचलता उस की छूट गई थी। अब वह अल्हड़ लड़की न रह गई थी, स्त्री बन चुकी थी।

शकुन्तला को अब उस के प्रति आक्रोष का स्थान न था। वह पूर्ण सावधानी से माँ की सेवा करती, घर का सारा धंधा करती। मानिक बाबू और शकुन्तला दोनों चकित थे, समझ न पाते थे कि इस परिवर्तन का कारण क्या है।

मीना ने एक दिन कह था, "राधा बहन ने मुझे जीवन का रास्ता दिखा दिया," शकुन्तला को बुरा लगा था, बहन शब्द, किन्तु वह चुप रही थी, मीना फिर कहीं न भड़क जाय। वह तो बेटी की स्नेह-सेवा पाकर यहाँ तक तैयार थी कि मीना अगर चाहती, तो कालेज जा सकती थी, किन्तु मीना ने स्वीकार नहीं किया था। "तुम्हारी देखभाल कौन करेगा?" उस ने कहा था।

लेकिन शकुन्तला मीना का सिर्फ बाहरी रूप देख पाती थी, उस के भीतर क्या भाव है यह समझते थे मानिक बाबू। कभी-

कभी फट पड़ती थी मीना, उन का उतना डर नहीं मानती थी, मित्र ही समझती थी, इसी से।

"राधा को आप लोगों ने इसी लिए निकाला कि आप झूठी मर्यादा के उपासक हैं," एक दिन उस ने कहा। मानिक बाबू ने इस कथन की मर्यादा को स्वीकार कर लिया। बोले, "ठीक कहती हो बेटी, लेकिन हम लोगों के लिए तो वह मर्यादा ही महत्व रखती है जो कि समाज ग्राह्य हो। समाज की दृष्टि में, राधा अग्राह्य थी,"

"समाज तो हमी लोगों से बनता है?" मीना ने पूछा "हमारे दृष्टिकोणों का समवाय ही तो समाज का दृष्टिकोण होता है। हम अगर अपने दृष्टिकोण बदल दें, तो समाज स्वयं अपना दृष्टिकोण बदल देगा। आपकी दृष्टि में वे क्या थीं? बताइये"

मानिक बाबू ने किंचित सोच कर उत्तर दिया, "मेरी दृष्टि में, मेरी दृष्टि में तो वह अत्यन्त भली लड़की थी, काश, कि मेरी बेटी होती वह भी।"

मीना उछल पड़ी। "ऐसी बहन पा मैं भी कितनी सुखी हो सकती थी, लेकिन जब पाया भी तो समाज ने उसे छीन लिया, आग लगे इस समाज को।"

"चली गई, कहाँ है, कैसे है, कुछ पता नहीं। आप लोगों ने जल्दी न की होती, तो कितना अच्छा होता, न जाने कहाँ है, किस कष्ट में है, समान भी तो यही छोड़......" मीना ने उसास लेकर कहा।

"हम नारियों के प्रति समाज हमेशा क्रूर रहता आया है, हमारे साथ अन्याय करने में ही उसे आनन्द मिलता है, राधा बहन ने तो सह लिया, मैं होती, तो तन जाती। अपने सुख के लिये, लड़ती, खूब लड़ती।"

"लेकिन उस ने तो प्रेम के सुख के लिये ही उसे छोड़ना

स्वीकार किया था। महान हृदय था उसका।"

"हूं—वह सब दिल भुलौना था। क्या आपने डाक्टर प्रेम को इतना सस्ता समझा है? क्या आप समझते हैं वे उन्हें भूल गये होंगे?"

मानिक बाबू प्रेम की चर्चा करते कुंठित से हो जाते थे, लेकिन मीना स्पष्ट वक्ता थी। वह स्पस्ट बात बोल देते हिचकती नहीं थी। "आप ने, चाहे जाहिरा तौर पर जो कारण मान उसे भगाया, आप की अस्तित्व की जड़ में मेरी चिन्ता थी। इनकार मत कीजिये, मैं खूब समझती हूँ। लेकिन डा० प्रेम के लिये मैं तो स्त्री थी ही नहीं, हम दोनों भिन्न धातु के बने थे, निबाह न सकते। उन के हृदय को जगाने के लिये, उन में पुरुषत्व का भाव जगाने के लिये तो ऐसी स्त्री चाहिये थी जो उन पर निर्भर करे उन्हें, गुरू, बड़ा मान कर चले। मुझ से तो वह होता नहीं, आपने इन सब बातों को न सोचा था," मीना आवेष में आ जाती थी तो उसे उचित-अनुचित का ख्याल नहीं रहता था। वह यह न समझती थी कि किस से बातें कर रही है।

नरेन्द्र ने पत्र लिखा उसे, राधा का हाल भी पूछा था।

मीना ने लिख दिया सब-कुछ, मन का गुबार निकाला खूब।

नरेन्द्र कुछ दिन बाद ही झाझा चला आया।

"अन्याय किया यह" उस ने मीना से कहा।

"भैया, खोजो उसे तुम, मेरे सिर पर यह पाप चढ़ा हुआ है, मेरे कारण ही न उस की यह गति हुई? तुम खोजो उसे।"

"जरूर खोजूंगा, तू निश्चिन्त रह। प्रेम ने नहीं खोजा उसे।"

"क्या जानूं?"

"खैर—हम खोजेंगे।"

नरेन्द्र ने समाचार पत्रों में विज्ञापन निकाल दिया—"राधा! तुम लौट आओ हमारे घर में तुम्हारा अनादर नहीं होगा मीना।"

मीना के नाम से ही, किन्तु महीनों गुजर गये, कोई उत्तर न मिला।

उस ने इधर-उधर खोजने की भी खूब चेष्टा की, पर वह भी निष्फल। भागलपुर, लखीसराय जहाँ-कहीं नर्स हो सकती थी वह घूमा। बहुत खोज-ढूँढ की उस ने, पर राधा तो जैसे खो गई थी।

राधा का जीवन-क्रम अब नियत हो गया था। पार्वती और वह दोनों संसार चलातीं। राधा पढ़ाने भी लग गई थी एक लड़की को। पाँच-सात रुपये वहाँ से भी मिल जाते थे, गृहस्थी चल रही थी किसी तरह।

जगत तो अब घर आता भी न था। इधर-उधर घूमता रहता, कहीं खा लेता, कहीं सो रहता। शरीर नष्ट कर लिया था उसने भी, तेल बहुत जल रहा था, दीया आखिर बुझने पर ही आ गया।

वह बीमार पड़ा। दो-तीन दिन तक तो बाहर ही रह गया, लेकिन फिर एक दिन ज्वर में चूर, लड़खड़ाता हुआ आ कर आँगन में गिर गया। राधा ने देखा—वह बेहोश-सा हो रहा था। वह घबड़ा गई।

डाक्टर ने आकर देखा—"कहा, टायफायड है। साथ ही, शायद शराब के कारण, लीवर भी खराब हो गया है। रोग सांघातिक है," और नुस्खा लिख दिया। राधा तो दवा देख घबड़ा गई—"रुपये कहाँ से आवेंगे ?"

काकी ने कहा—"घर-द्वार बेचना होगा, क्या इस आवारे के

खातिर ? मरने दो।" राधा पार्वती के चेहरे को देख रही थी उसके दुःख के भाव देख उसने कहा, "घबड़ा मत भौजी, भगवान पार लगायेंगे।"

पार्वती ने जो दो-चार चाँदी के गहने थे, लाकर सामने रख दिये। रोते हुए कहा, "जो समझो करो दीदी।"

"इन्हें रख, इनकी जरूरत नहीं।" राधा सोच रही थी मीना के दिये गहनों की बातें, लेकिन वह कैसे बचे ?

कठिनाई से उसे याद आई मनिक बाबू की बात—"जब जरूरत हो मुझे लिखना, बेटी!"

लज्जा तथा संकोच त्याग, वह सहायता के लिए पत्र लिखने बैठी। अन्त में लिख दिया था कि किसी को उसका पता न बतावे।

मानिक बाबू ने पत्र पाया और तुरन्त ही रुपये भेज दिये। लिखा, "संकोच न करना। जब जरूरत हो लिखना, कहो तो मैं भी आऊ ?"

राधा का उत्तर मिला—"भगवान पार लगायेंगे। मेरे संसर्ग से कहीं आप पर समाज का क्रोध न टूट पड़े।"

मानिक बाबू पत्र लिए सोचते रहे कि 'यह व्यंग है, या सरल हृदय का विश्वास ? अगर व्यंगात्मक समझा ही जाय, तो भी, ठीक ही तो है—समाज के भय से ही न उन्होंने राधा को यह कष्ट सहने पर मजबूर किया था।'

वे यही सब सोचते बैठे थे कि नरेन्द्र आया। "किसका पत्र है ?" उसने पूछा, "बड़े सोच में पड़े हैं"

मानिक बाबू ने पत्र छिपा लिया—"कुछ नहीं नरेन्द्र, यूँ ही सोच रहा था।"

"क्या ?"

"यही कि हम कितने स्वार्थी होते हैं। हमारे पापों का प्रायश्चित दूसरों को करना पड़ता है।"

"हमने कौन पाप किया है?" नरेन्द्र ने जरा हँस कर पूछा। "मुझे तो मालूम ही नहीं।"

"वाह! मनुष्य हैं हम भी, तो पाप जरूर किये होंगे।"

"मनुष्य मात्र ही पाप करता है?"

"हाँ।"

"तो वह पाप नहीं। जिस कार्य को प्रत्येक मनुष्य करता है, वह मानव-स्वभाव होता है। अगर आप ईश्वर को मानते हैं तो ईश्वरीय देन जो प्रत्येक में अभिव्यक्त होती है, पाप नहीं कह सकते।"

"तुम्हारे समझ से पाप कुछ है ही नहीं?"

"पाप, जिस अर्थ में आप समझते हैं, कुछ नहीं है, सिर्फ भावना के द्वारा ही कोई चीज पाप-पुण्य होती है।"

"यानी?"

"यानी जो कार्य सद्भावना द्वारा प्रेरित हो वह अच्छा, जो दुर्भावना द्वारा प्रेरित हो वह बुरा। दुनिया में हर चीज की जाँच हम सिर्फ यह प्रेरणा देख कर ही कर सकते हैं।"

"चाहे उसका फल कैसा ही हो? यह तो ठीक नहीं जँचता?" मानिक बाबू ने सन्देह प्रगट किया।

"फल भी तो कई तरह का होता है। एक तो निकट भविष्य का, एक दूर भविष्य का। आपको दोनों का ध्यान रखना पड़ेगा, तभी आप किसी कार्य के फल को जान सकेंगे।"

"लेकिन कई कार्य तो स्वतः बुरे होते हैं। जैसे चोरी, खून इत्यादि।"

"नहीं, कोई कार्य स्वतः बुरा नहीं। चरम बुराई या चरम भलाई इस दुनिया में नहीं होती। सापेक्ष ही होती है। आप

जिसे बुरा कहते हैं। वह अच्छा फल दे सकता है। कृष्ण भगवान ने भी तो कहा था—'आताताइयों को मारना अच्छा है।' इसलिए नहीं कि हत्या अच्छी है, बल्कि इसलिए कि उसके पीछे सद्भावना है, और उसका फल अच्छा होगा। रही चोरी की बात, सो आजकल अगर लोग चोरी न करें तो खायें कहाँ से? चोरी समाज ने बनाई है, समाज ने उसे बुरा ठहराया, क्योंकि अगर सब कोई सब किसी की चीज ले लेते तो गड़बड़ मचती। देखा गया कि इस पर प्रतिबन्ध लगाने से लाभ है। बाद में हमने उस चीज का परम्परागत साधन मूल्य (Value) ही मुख्य समझकर उसे चरम मूल्य मान लिया, यह हमारी गलती है, और इसके पीछे, क्योंकि स्वार्थ भावना ही थी, यह पाप ही कहलायेगा।"

"क्या कहा? चोरी को पाप कहना पाप है?" मानिक बाबू ने नेत्र विस्फारित करते हुए पूछा।

"उसे चरम पाप कहना ही पाप है। मेरे कहने का अर्थ यही है—सापेक्ष रूप से, समाज की किसी अवस्था में वह पाप था, अब उसका साधन मूल्य नहीं रह गया। स्वयं भूखों मरने से अच्छा मैं चोरी करना ही समझूंगा।"

"अजब आदमी हो तुम? चोरी को अच्छा समझोगे। झूठ को सबसे ऊँचा, हत्या को ठीक।"

नरेन्द्र हँस पड़ा। "आप ही बताइये, कभी-कभी आप झूठ को ही ठीक समझते हैं कि नहीं?"

"किसी की जान-माल बचाने के लिए झूठ बोलना" मानिक बाबू ने स्वीकार किया।

"जी हाँ। सच बोलना ठीक है, पुण्य है, झूठ पाप। किन्तु खास-खास अवसर पर सत्य बोलना पाप हो जाता है, क्योंकि

उसके पीछे दुर्भावना रहती है।"

"तुम्हारी समझ में तब दुर्भावना ही बुरी है ?"

"जी हाँ।"

"तब, तब तो हम ठीक थे न ?"

"यानी ....।"

"राधा।" नरेन्द्र चौंका, बोला—"राधा को भगाकर आपने बुरा किया।"

"क्यों ? हम भी तो सद्भावना से प्रेरित थे।"

"सद्भावना कैसी ? आपने स्वार्थवश वैसा किया। अगर आप समझते कि वैसा करने के फल क्या होंगे, तो न करते।"

"हमने तो यही समझा था कि वैसा न करने पर हमें समाज से लांछित होना पड़ता।"

"आपने निकट भविष्य को ही देखा, किन्तु दूर भविष्य में—आने वाला समाज जो आपकी श्रद्धा करता, इस बात को न सोचा, खैर। राधा बेचारी की क्या हालत हुई होगी। यह तो वही जाने या उसके भगवान्। आपके कार्य का फल उसके लिए क्या हुआ, इसका तो आपने कभी सोच नहीं किया। जाने कहाँ है, कैसे है, जीती है कि मरी।"

मानिक बाबू राधा का वर्जन भूल गये। आवेष में आ उन्होंने पत्र आगे बढ़ा दिया—"देखो क्या लिखती है ?"

"राधा का पत्र है ?" उत्सुक होकर नरेन्द्र ने पत्र ले लिया। आद्योपान्त पढ़ लिया। उसका मुख गम्भीर हो गया—"यह तो हुआ आपके शुभ कार्य का फल।" उसने कहा। मानिक बाबू जरा खिजला गये।

"हमें ही दोष देते हो ? तुम होते तो तुम भी वही करते जो मैंने किया।"

"मैं होता तो प्रेम की पीठ ठोकता, कहता कि बहुत ठीक किया उसने।"

"बच्चू अपने सिर पड़ी नहीं है इसीलिए कहते हो। जहाँ अपना सवाल आता है वहाँ सारी शोखी भूल जाती है। समाज में रहना है। जानते हो न?"

"जी हाँ, जानता हूँ कि व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक आदमी भला होता है, पर सामाजिक रूप से मनुष्य नीच है, कायर है, क्षुद्र है।" नरेन्द्र उठ गया, जाने लगा तो मानिक बाबू ने पूछा—"कहाँ चले?"

"सुलतान गंज।"

"सुलतानगंज!" आश्चर्यसे मानिक बाबू ने पूछा—"क्यों?"

"राधा से क्षमा मांगने। अपने समाज के अन्याय का प्रतिकार करने।"

"क्या करोगे?"

"उस कष्ट से उसका उद्धार तो जरूर करूँगा। चाहे जैसे हो।"

मीना ने सुना, तो स्तब्ध रह गई। राधा की यह दुर्वस्था।

"जाओ भैया!" उसने नरेन्द्र से कहा—"उसे दुःख तो हम दे ही चुके। कुछ प्रतिकार कर सको तो करना।"

शकुन्तला किन्तु सुनकर चिढ़ उठी। नरेन्द्र को काफी रोका उसने, समझाया; डाँटा भी, किन्तु वह न माना। "पढ़-लिख कर सब भ्रष्ट हो गये हैं," कहकर शकुन्तला ने सन्तोष किया।

नरेन्द्र चला गया।

राधा का घर खोजने में उसे दिक्कत नहीं हुई। वह धर्मशाला में ठहरा था। वहीं से उसने देखा। शाम के अँधेरे में राधा सिर पर पानी की कलसी रखे लौट रही है, उसी समय उसे

पुकारना उसने उचित नहीं समझा। वह सिर्फ उसके पीछे-पीछे जा उसका घर देख आया।

और सुबह ही वह पहुँचा वहाँ। राधा घर बुहार रही थी। नरेन्द्र की पुकार सुन, और उसे सशरीर वहाँ खड़ा देख, उसका चेहरा आरक्त हो उठा। वह कुछ उत्तर न दे सकी।

नरेन्द्र ने ही फिर कहा—"तुम्हारा पत्र मिला था। इसी से मैंने समझा कि तुम अकेले कितना कर सकोगी, मेरा आना उचित होगा।"

राधा तब भी निरुत्तर रही। काकी भी उठ आई थी—नरेन्द्र को देखकर, तथा राधा की भावभंगी देख, उसने मन-ही-मन अनुमान लगाया, और बोली—"बाबू खड़े हैं। तूने बैठने तक को न कहा। क्या इतना भी शऊर नहीं रह गया है?" और तब, नरेन्द्र की ओर, मुड़कर दाँत निपोर बोली—"आइये, बैठिये बाबू।" नरेन्द्र चारपाई पर बैठ गया। काकी की बातों का उत्तर न दे, चारों ओर देखकर बोला—"राधा, तुमने पहले पत्र क्यों न लिखा था?"

राधा का कंठ खुला। क्रोध से, लज्जा से, काँपते स्वर में बोली—"आप क्यों आये नरेन्द्र बाबू?"

"क्यों आया? मानिक बाबू ने कहा था, कि तुम्हें सहायता की जरूरत है। इसी से।"

"सहायता मुझे मानिक बाबू से मिल चुकी थी।"

"बिगड़ना पीछे, पहले स्थिर हो लो। जब आ ही गया हूँ, तो यूँ जाऊँगा नहीं, समझ लो—"

राधा ने हाथ से झाड़ू फेंक दिया। पास आकर धीरे से बोली—" पाँव पड़ती हूँ आपके, चले जायं आप अभी।"

नरेन्द्र ने भी उसी तरह धीरे से कहा—"कोई डर नहीं है राधा।"

राधा उसका इंगित समझ गई। सुर्ख हो गया चेहरा उसका।

काकी उनकी यह गुपचुप बात सुन रही थी, मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी। उसने पास आकर राधा से कहा—"जा, नहा-धोकर साफ कपड़े पहन ले, क्या भूतनी-सी बनी हुई है?"

नरेन्द्र ने काकी की ओर देखा—"जरूरत नहीं है उस सब की। मैं कोई पराया थोड़े ही हूँ।"

"वही तो—"

"तू जा काकी।" राधा की धौंस सुन बुढ़िया खिसक गई। राधा ने नरेन्द्र की ओर देखा। आँखें चमक रही थीं, उसकी बोली—

"नरेन्द्र बाबू। आपने मुझे क्या समझा है?"

तुम्हें "समझा है एक बन्धु। जिसे सहायता की जरूरत है।"

"बन्धु—" दोनों की नजरें मिलीं। राधा जैसे नरेन्द्र का अन्तरतम भाव जान लेना चाहती हो। नरेन्द्र ने नजर हटाई नहीं।

"समाज की दृष्टि में, क्या अर्थ होगा, जानते हैं?" राधा का स्वर प्रकम्पित था।

"जानता हूँ, और अपने लिये उसकी परवाह भी न करता हूँ।

"आपके घर के लोग?"

"मीना ने तो भेजा ही है जोर करके—" राधा की आँखें भर आईं—मीना का नाम सुन। उन्हें पोंछते हुए बोली—"वह देवी है।"

पावती दरवाजा से खड़ी देख रही थी। उसने पूछा"—कौन है?"

काकी ने उत्तर दिया—"तेरे नन्दोसी" "हत् पूछती हूँ मैं।" पार्वती ने धीमे पुकारा "दाई!"

राधा चली गई पूछा—"क्या ?"

"कौ है ?"

"फिर बताऊँगी सब।"

जल्दी-जल्दी उसने स्नान इत्यादि से फुरसत पा, जलखई बना, चाय के लिये प्याला न था, गिलास में ही लेकर आई और नरेन्द्र को सामने रखकर बोली—"नरेन्द्र बाबू, गिलास में तो चाय पीने का अभ्यास न होगा। पर यहाँ तो मेज-कुर्सी, प्याला-पिरच नहीं हैं।"

नरेन्द्र धप् से जमीन पर बैठ गया। राधा हाँ-हाँ करती रह गई।

"स्वाद मुख को होता है कि प्याले-पिरच को ?" नरेन्द्र ने पूछा ?

"आपको अभ्यास नहीं है।"

"खूब अभ्यास है। कलकत्ते में तो यही रवैया चलता ही था।" नरेन्द्र ने खाना शुरू कर दिया, "तुम—तुम नहीं पीती हो चाय ?"

राधा ने सिर हिलाया—"गरीबों को सब अमीरी आदतें नहीं सोहतीं।"

"पहले तो पीती थी।"

"छोड़ दिया।"

"क्यों ?" राधा चुप रही। नरेन्द्र ने फिर कहा—"तुम से झगड़ना है मुझे राधा, लेकिन अभी नहीं, अभी काम की बातें करो, कौन बीमार है ?"

"जगत भैया।"

"क्या हुआ है ?"

राधा ने डाक्टर का कथन सब सुना दिया। नरेन्द्र ने खुद

भी देखा, फिर बोला—"अच्छे डाक्टर को बुलाता हूँ।"

"यहाँ तो यही एक है।"

"तो और कहीं से" और सचमुच नरेन्द्र एक दूसरे डाक्टर को बुला ही लाया। लेकिन वही रहा, दवा में अन्तर हुआ जरूर। सभी बातें पूछताछ कर नरेन्द्र ने कहा—"आप रोज आकर देख जाइएगा डाक्टर साहब।"

डाक्टर बाबू जब चले गये तो राधा ने कहा—"व्यर्थ।"

"व्यर्थ क्यों? मैं बीमार पड़ता तो कितने डाक्टर बुलाता?"

"आपकी बात दूसरी है, लेकिन हम गरीब—।"

"गरीब अपनी मर्जी से हो। वहाँ से न भाग आती तो—

राधा का चेहरा सूख गया; करुणस्वर से बोली—"जिक्र मत कीजिये उन बातों का—

"अच्छी बात है, लेकिन मेरे काम में बाधा मत देना तुम भी, जो करता हूँ करने दो।"

"कर्जा कैसे चुकाऊँगी मैं?"

"मत चुकाना, मैं मागूँगा तब न? लेकिन कर्जा तुम पर थोड़े होता है?"

"मेरे ही कारण तो।"

"देखता हूँ, तुम अपने को खूब बड़ा समझने लगी हो—" नरेन्द्र ने हँसी की। "तुम्हारे कारण क्यों?"

"वर्ना आप आते ही न—

"खैर, जो कुछ हो। कभी तुमने हमारी सेवा की थी, अब हमारी बारी है।"

"आपकी सेवा कब की मैंने?"

"मेरी दीदी की ही सही। मैं भी तो तुम्हारे दादा की ही सेवा कर रहा हूँ।"

नरेन्द्र ने राधा पार्वती दोनों को छुट्टी दे दी। दिन-भर वह

जगत के पास बैठा रहता । दवा पिलाना, उठना-बैठाना—सब करता । जगत प्रायः बेहोश रहता था। पार्वती रोने लगती तो वह डाँट देता। "हम पर विश्वास नहीं ? अपने पर विश्वास नहीं ?" वह कहता—"अपना काम किये जाओ, जगत अच्छा हो जाएगा।"

पार्वती नरेन्द्र के बर्ताव से चकित थी। मनुष्य में इतनी आत्मीयता, इतनी करुणा उसने पहले नहीं देखी थी।

"तुम बड़ी भाग्यवती हो दाई।" उसने राधा से कहा—राधा समझ न सकी "क्यों ?" उसने पूछा।

"ऐसा सहायक पाकर भी तुम उसे छोड़े हुए थीं।"

राधा के चेहरे को देख वह डर गई, वह एक दम से काला पड़ गया था।

"नरेन्द्र बाबू मेरे कोई नहीं है।" राधा ने कहा—"कोई नहीं—कोई नहीं...."

"काकी ने तो कहा था कि—"

"कि।" राधा की आवाज इतनी धीमी थी कि वह कठिनता से सुन सकती।

"कि वे मेरे नन्दोसी हैं।" राधा सिहर उठी—"झूठ है। एक दम उसने कहा—पार्वती राधा का यह आवेषपूर्ण प्रतिकार सुन विस्मित हो उठी।"

"खैर होगा, जाने दो।"

लेकिन बुढ़िया ने मुहल्ले-भर में हल्ला कर दिया था। राधा के लिए बाहर निकलना कठिन हो गया। पड़ोसिनें जहाँ देखतीं—पूछतीं "लड़कर भाग आई थी न ? खैर कोई बात नहीं। अब मत लड़ना, ऐसा भला लड़का है।" इत्यादि-इत्यादि। वह शर्म से कट जाती, उत्तर नहीं देती, और लौट आती।

नरेन्द्र से बोलती नहीं थी। वह भी प्रायः रोगी के पास ही

रहता, उसे घूमने का अवसर कम था। वह नहीं जान रहा था कि यह चर्चा फैल रही है।

दस-पन्द्रह दिन गुजर गये थे। जगत अच्छा हो रहा था। होश थी उसे, किन्तु अजनबी को देख अधिक बातचीत नहीं करता था। सिर्फ एक दिन पूछा था उसने "आप ?" नरेन्द्र ने उत्तर दिया था—"दोस्त।"

"दोस्त है कोई मेरा भी ?" हैरान होकर जगत ने कहा था—"मैं तो समझता था...."

'चुप रहिये अभी कमजोरी है....।"

जिस दिन जगत को पथ्य पड़ा उस दिन राधा ने नरेन्द्र को बुलाया। अपनी कोठरी में ले गई उसे, और बैठा दिया। स्वयं नीचे बैठ गई, और बोली—"अब ?"

"अब क्या ?"

"अब क्या कीजियेगा ?"

"जो कहो।"

"मैं क्या कहूँ ?"

"राधा !" नरेन्द्र का स्वर अनुनय पूर्ण था—"मेरी बात मानोगी ?"

"कहिये।"

"चलो यहाँ से।"

"कहाँ ?" राधा के नेत्र भर आये।

'मेरे घर।' नरेन्द्र ने राधा के हाथ पकड़ लिये। अत्यन्त कोमलता से—"तुम यहाँ, इस गन्दगी के लायक नहीं हो। जीवन बर्बाद कर रही हो। वहाँ चलो जहाँ तुम्हारा जीवन व्यर्थ न हो, जहाँ तुम्हारी कद्र हो।"

राधा धीरे-धीरे रोने लगी।

"नरेन्द्र बाबू", उसने कहा—"आप जानते हैं ?"

"जानता हूं राधा। किन्तु उससे तुम्हारा महत्व कम नहीं हुआ। मैं तुम्हारी श्रद्धा अत्यधिक करने लगा हूँ। प्रेम की भलाई के लिए तुमने जो त्याग किया, वह हर किसी से न होता। तुम्हारी जगह पर मैं होता, तो मैं, अपने स्वार्थ के लिए डट जाता—लड़ता सभी से।"

"फिर आप कहते हैं, वहीं लौट चलने को? आप भी तो समाज में ही रहेंगे!"

"राधा, मैं समाज से डरता नहीं, समाज को हमने ही बनाया है, समाज हमारा है। हम समाज के नहीं हैं, तुम समाज से डर गईं। ठीक नहीं किया था तुमने।"

"उनकी माँ।"

"उनकी बात दूसरी है।" नरेन्द्र विचार-मग्न हो गया था। "खैर जाने दो उन बातों को; मेरे घर पर कोई नहीं है जो तुम्हारा अपमान करे। तुम रहो वहीं जाकर।

"लेकिन उससे आपकी निन्दा होगी।"

"मुझे उसकी पर्वाह नहीं।"

"और मैं ही कैसे वहाँ रहूंगी। मेरा आप पर अधिकार ही क्या है?"

"अधिकार क्यों नहीं है? तुम्हें जरूरत है, और सबसे बड़ा अधिकार तो जरूरत का ही होता है। लेकिन, अगर उससे सन्तोष न हो, तो मेरी प्रार्थना है कि मुझे तुम वह अधिकार दो कि मैं तुम्हें घर रहने का अधिकारी बना दूँ।"

"कैसे?"

"तुमसे विवाह करके।" राधा चौंकी। उसने हाथ खींच लिया अपना। "चौंको मत राधा। मेरे कहने का अर्थ समझ लो पहले।"

मैं जानता हूं कि तुम्हारे लिए मेरा अस्तित्व नहीं के समान है। किन्तु मैं तुम्हें यों ठोकरें खाते नहीं देख सकता। तुम्हारी यह काकी, खूब पहचान गया हूँ मैं उसे, तुम समझती हो कि तुम यहाँ रह सकोगी? गंगाजी में डूब मरोगी, मेरे यहाँ रहने में तुम्हारी निन्दा होगी, तुम्हारा अधिकार नहीं है। किन्तु मेरी स्त्री के रूप में, तुम्हें वह अधिकार रहेगा। बाकी के लिए तुम चिन्ता मत करो। विवाह समाज की दृष्टि में ही होगा, आपस में हमजो इस समय हैं, वहीं रहेंगे—बन्धु—उससे अधिक की मैं न आशा करता हूं, न दावा करूंगा।"

राधा ने स्थिर जड़ हो सुना। देर तक वह स्तब्ध-सी बैठी रही। फिर नरेन्द्र के चरण छूकर बोली—'आप महान हैं, मैं क्षुद्र। आपका अपमान क्यों होने दूँगी?"

"कौन तुम्हें क्षुद्र कहता है?"

"मैं स्वयं? आपने मुझे पहचाना नहीं है, मैं पतिता हूँ—" राधा ने अपनी पुरानी बीती सुनाई उसे। नरेन्द्र ने सुनकर कहा—"राधा, जितना हमने समझा था, उससे अधिक उन्नत हो तुम, मुझे उस सब की न चिन्ता है, न पर्वाह, लेकिन, तुम्हारे ही विचार से, उन बातों को दबा देना ही उचित है, और उसका एक ही रास्ता है—विवाह। बोलो—"

"नरेन्द्र बाबू।" राधा ने कांपते स्वर में कहा—"आपके एहसानों से दबी हुई हूँ, और कितना भार लादियेगा? सहन कर सकूँगी।

"मेरी बात मान कर तो तुम मुझ पर ही एहसान करोगी राधा। तुम्हारे काम आ सकूँ, यह तो मेरी खुश-किस्मती होगी।

राधा ने फिर उसे प्रणाम किया, नरेन्द्र उठकर बाहर चला गया। राधा वहीं, धरती पर लोट कर रोती रही, सिर पटक-पटक कर।

प्रेम ने टिकट लिया था झाझा का ही। पहले वहीं से खोज प्रारम्भ करेगा।

जब से झाझा से लौटा था उसने पत्र भी नहीं लिखा था, लिखता किसको? मीना को? साहस नहीं होता था उसे। शकुन्तला को? मारे लाज के कलम न उठती थी। मानिक बाबू को? राधा के लापता होने में उनका भी हाथ अवश्य था। यह सोचकर क्रोध था उन पर...किन्तु यह अवसर क्रोध का न था, उसे जाना ही होगा वहाँ, मुँह दिखाना ही होगा, साहस करना ही होगा। उसे याद था कि राधा समान इत्यादि वहीं छोड़ गई, ले गई हो तो समाचार मिलेगा।

सामान उसने स्टेशन पर ही छोड़ दिया, मानिक बाबू के यहाँ ठहरने की हिम्मत न थी उसमें, और अकेला उनके घर गया। सुबह का वक्त था, मानिक बाबू बगीचे में टहल रहे थे। प्रेम को देखा, तो पहचान न सके।

पूछा—"कौन?"

प्रेम ने नमस्कार किया, और सूखी हँसी हँसकर कहा—

"अब तो आप पहचानने में मैं भी सकुचाते हैं?"

मानिक बाबू ने लपक कर उसे सीने से लगा लिया।

"यह क्या हाल है तुम्हारा, प्रेम? उन्होंने पूछा।"

"ठीक है।"

"चलो, भीतर बैठो—" प्रेम को हिचकते देख, उन्होंने पुकारा—"मीना, ओ मीना।"

मीना बाहर निकली, प्रेम को देख ठिठकी, फिर पहचान कर पास आई, प्रणाम किया।

"बहुत दुबले गये हैं आप।" उसने कहा

सिर झुकाए प्रेम ने कहा—"तबियत खराब थी।" उसके बाद, क्या कहे समझ में न आ रहा था उसे, वह बैठा—तो बैठा रह गया।

अचानक मानिक बाबू ने कहा—"खाया तो न होंगे?" और वे उठ गये, खाने का प्रबन्ध करने।

प्रेम और मीना अकेले रह गये? दोनों ही चुप थे, शायद बीती बातों की याद करते हों। आखिर मीना ने ही मौन तोड़ा।

"कैसे आये डाक्टर प्रेम।"

"ऐसे ही।

फिर चुप्पी....

मानिक बाबू फिर आये, "चलो प्रेम। तुम्हारी मौसी बुलाती है।"

शकुन्तला ने प्रेम को देखा तो रोदी।

"हाय बेटा! यह क्या हो गया तुम्हें?" उसने कहा—प्रेम ने प्रणाम किया उन्हें, और बात टालने के लिए पूछा—

"क्या हाल है अब मौसी?"

"अब तो अच्छी हूँ बेटा, तुम्हारे हाथ का जस है।" कृतज्ञता टपकती थी स्वर से। प्रेम चुप रहा। खाने बैठा, तो खाते न बनता था, जल्दी ही उठ गया।

अन्त में मीना से ही पूछा उसने—"मीना ! राधा का कुछ हाल पता है ?"

"क्या कीजियेगा पूछ कर ?" मीना ने जरा कटु होकर पूछा।

प्रेम का स्वर उदास हो गया।

"क्या करूँगा ? नहीं जानता। लेकिन फिर भी, पूछता हूँ, कुछ पता लगा उसका ?"

"पता लगा ? किसने पता लगाया यहाँ ? जब आपने ही उसे छोड़ दिया, तो और कौन खोजता उसे ?"

"उसने मना किया था।"

"तो वह प्रतिबन्ध अभी भी तो है।"

प्रेम निरुत्तर हो गया, लेकिन उसके चेहरे को देखकर मीना को तरस आ गया। बोली—"हाँ, डा० प्रेम, पता लगा।"

प्रेम ने पूछा "कहाँ है।"

"मना तो कर दिया है उन्होंने, लेकिन, आपका अधिकार है।" और मीना ने राधा के पत्र का सब समाचार कह सुनाया "तीन सप्ताह हुए, नरेन्द्र भैया गये हैं। वहीं है अभी तक...." अन्त में उसने कहा—

प्रेम उठकर टहलने लगा, नरेन्द्र—नरेन्द्र, उसके दिमाग में रह-रहकर खटकता था, नरेन्द्र।

डाक आई, मानिक बाबू ने पत्र खोला, प्रेम देख रहा था अन्यमनस्क-सा।

मानिक बाबू ने एक पत्र खोला, पढ़ा, मुख से निकला "अंय्" और वे उठ खड़े हुए।

मीना ने पूछा, "किस का पत्र है ?"

"नरेन्द्र का ?" उसने पूछा

मानिक बाबू ने गंभीर भाव से प्रेम की ओर देखा न प्रेम एकाग्र दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था।

"हाँ, नरेन्द्र का है," उन्होंने कहा, "आगामी बुध को उसका विवाह राधा से होने जा रहा है। उसी के लिये बुलाया है हम सबको।"

प्रेम निस्पन्द हो गया। नरेन्द्र और राधा से विवाह। राधा से नरेन्द्र का विवाह।

वह आगे सोच ही न सका, आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था, वह बैठ गया।

"प्रेम, विचलित न हो," मानिक बाबू कह रहे थे, मीना ने चुपचाप आगे बढ़, प्रेम के कन्धे पर हाथ रख दिया—धीरे से स्पर्श से प्रेम सिहर-सा उठा—कृतज्ञ नेत्रों से उसने मीना की ओर देखा, धन्यवाद देते हुए—लेकिन, राधा से नरेन्द्र का विवाह...

मनिक बाबू तथा मीना, दोनों ही समझ न पा रहे थे। और शकुन्तला ने जब सुना तो और भी सिर धुनने लगी। "जादूगरनी है वह," उसने कहा—"यहाँ थी, तो और मुझे ही फुसला लिया था, और वहाँ—नरेन्द्र को भोला पा ठग रही है।"

मीना ने डाँटा—"ख्याल करो माँ, कुछ भी।"

"प्रेम को न पा सकी, तो नरेन्द्र ही सही—" शकुन्तला ने फिर कहा—"हरगिज न होने दूँगी, अभी दस रोज हैं। चलो आज ही जाती हूँ उसे समझाने।"

"तुम्हें तो बुलाया ही है उसने।" मानिक बाबू ने प्रेम की ओर देखा।

प्रेम ने कहा। "मैं भी जाऊँगा—" और वह भी गया साथ ही।

नरेन्द्र ने मकान ठीक कर रखा था, सब वहीं उतरे, प्रेम को देख नरेन्द्र हक्का-बक्का-सा रह गया। बोला—"आप!" "हाँ, मैं! क्या मैं तुम्हें बधाई भी नहीं दे सकता?"

नरेन्द्र का चेहरा करुण हो उठा, "उपहास न करो डा० प्रेम! जीवन ही मुझ से काफी परिहास कार रहा है।"

प्रेम समझा नहीं। किन्तु चुप रहा।

शकुन्तला ने नरेन्द्र को बहुत समझाया। परन्तु वह न माना न माना। "जबान दे चुका हूँ।" इतना ही कहा उसने।

दो-तीन दिन काटे प्रेम ने किसी तरह, फिर न रह सका। राधा को देखने गया।

राधा बैठी थी—रूखे केश, चेहरा विकृत, आँखें लाल। प्रेम को देख, उसे लगा मानो भूत आया हो, फिर उठकर उसके पाँवों पर गिर पड़ी। उसका रोना मानों पृथ्वी को हिला देता।

प्रेम ने उसे उठाने की चेष्टा की, राधा को ज्ञात हुआ—वह उठकर पीछे हट गई।

"जाओ,तुम जाओ," रुँधे कंठ से कहा—"मैं पापिष्ठा हूँ, छोड़ दो मुझे।"

"राधा?" प्रेम ने फिर कहा।

"राधा मर गई। तुम जाओ—जाओ—जाओ।" कहते-कहते राधा गिर पड़ी। बेहोश-सी हो गई थी वह।

अचानक नरेन्द्र आया। देखा उसने—क्रोध उमड़ आया उसका।

"डा० प्रेम! आप यहाँ क्यों?" उसने कर्कश स्वर में पूछा—"क्या जो कर चुके हैं वह काफी नहीं है? मुझे कुछ तो प्रायश्चित्त करने दीजिये आप लोगों के पापों का।"

"नरेन्द्र!" प्रेम ने अपने को संयत रखते हुए कहा—"राधा—"

"नाम मत लीजिये उसका।" नरेन्द्र ने गर्ज कर कहा—"याद रखिये। एक सप्ताह में उससे मेरा विवाह होने जा रहा है।"

प्रेम धीरे-धीरे बाहर निकल गया। डेरे पर आ, उसने माँ को पत्र लिखा। सब समाचार, इस दुःख में उसकी सहायता और कौन कर सकता था?

विवाह की तैयारियाँ होने लगी थीं, शकुन्तला रो धो कर चुप थी, क्या करती?

किन्तु राधा जो पछाड़ खाकर गिरी थी, सो उसे होश नहीं हुआ दिन-भर, दूसरे दिन भी, वह प्रलाप करती रही। तीसरे दिन, ज्वर में बेहोश थी वह।

प्रेम ने देखा—शौक—उस ने कहा—"दो सप्ताह पूर्ण आराम। "वर्ना, जीवन की आशा नहीं है।" और पारस्परिक द्वेष भूल दोनों उसकी सेवा में लग गये। अपने डेरे में ले आये थे उसे।

मीना ने दोनों को हटा दिया—"जाओ तुम लोग। मेरा काम है, मैं करूँगी। मेरी ही तो बहन है," उसने कहा।

नरेन्द्र और प्रेम, दोनों बाहर बैठे रहते, एक दूसरे से बोलते नहीं थे, एक-दूसरे की ओर देखते और मुँह फिरा लेते, दोनों ही को राधा के समीप जाना मना था, दोनों दो जानवर थे, जो कि अपने शिकार से वंचित हों, एक दूसरे को घूरते हों।

तभी केतकी के आने से वायु-मंडल की तना-तनी टूटी, मीने ना मुक्ति का श्वास लिया।

प्रेम जब तक गाड़ी में दिखाई देता रहा, केतकी खड़ी देखती रही। फिर एक निश्वास लेकर लौट पड़ी।

आज उसने दूसरी दफे प्रेम को अज्ञात की ओर प्रेरित किया था। प्रेम का इस यात्रा का फल शुभ हो, यही मनाती वह घर लौटी।

लेकिन उसे चिन्ता से मुक्ति न मिली। उसने प्रेम को कह दिया था। उसे खोजने को, और प्रेम को भेज भी दिया था। लेकिन उसके बाद? यह उसने सोचा भी न था। उसके सामने एक ही प्रश्न था, प्रेम की यह अन्यमनस्कता दूर करना, उसे दिल लगाने का कोई साधन देना, घूमना ही सही। उसे आशा थी कि घूमने-फिरने से—दृश्य परिवर्तन से—उसका हृदय उस धक्के को भूल जायगा। और वह फिर जीवन की ओर अग्रसर होगा।

किन्तु प्रेम, जो हमेशा उसकी बात को वेद-वाक्य मानता आया है? उसने तो यही समझा था कि उसकी माँ सचमुच, सच्चे दिल से उसे खोजने को कह रही है खोज कर, पालने पर, उसे स्वीकार कर लेगी। इसी आशा पर वह गया था।

अगर, उसे मालूम हुआ कि यह दुराशा-मात्र थी, तब? क्या यह धक्का वह सह सकेगा? माँ की यह प्रवंचना—क्या वह मातृ हृदय के स्नेह से उत्पन्न छलना समझ कर क्षम्य समझेगा। अगर नहीं? केतकी को रोमांच हो आया। अगर कहीं वह उसे मिथ्या वादिनी कहकर घृणा करने लग जाय तो? उसे वह नहीं सह सकेगी। उस प्रेम की उपेक्षा, जिसे उसने... बचपन से ही यह बताया है कि संसार में उसकी सबसे बड़ी हितैषिणी वही है। उसी पुत्र से भी अधिक अपने प्रेम की उपेक्षा, कल्पना करके ही केतकी सिहर उठी। नहीं-नहीं, उसे दिये वचन की रक्षा करनी ही होगी।

किन्तु केतकी ने वचन ले लिया था, कि राधा मिलने पर उसी की होगी। प्रेम का दावा न रहेगा। यह तो उसे नहीं मालूम था कि राधा को लेकर वह क्या करेगी। किन्तु, प्रेम ने वचन दिया था कि वह उसके बाद माँ का आदेश-पालन करेगा। माँ उसे विवाह करने को भी तो कह सकती है। राधा को सकुशल रखकर, प्रेम को कर्तव्य के नाते ब्याह में आपत्ति न होनी चाहिये। उस पर केतकी का अधिकार क्या इतना भी नहीं?

किन्तु प्रेम का जीवन, क्या सुखमय हो सकता है? वह जानती थी प्रेम को, प्रेम शीघ्र परिवर्तित होने वाला लड़का नहीं था। उसके जीवन में प्रेम एक ही दफे आ सकता है।

सोचते-सोचते वह चंचल हो जाती। इस कोठरी से उस कोठरी, इस काम को छोड़ उस काम में लग जाती। व्यस्त रह कर अपने को सोचने का मौका देना नहीं चाहती थी।

तभी एक दिन विन्ध्येश्वरी बाबू ने कहा—"प्रेम को तो भेज दिया—"तुमने, अब क्या सोचती हो?"

"सोचूँगी क्या?"

"लड़की-उड़की देख, उसका व्याह कर दो। झँझट सिर पर पड़ेगी। तो सँभल जायेगा।"

"वही करूँगी।"

"कमलेश्वरी बाबू।"

"नहीं उनकी लड़की मुझे पसन्द नहीं। मैं स्वयं: लड़की देखूँगी।"

"तुम खुद बतुहारी करने निकलोगी क्या?" विन्ध्येश्वरी बाबू ने कुछ मसखरेपन के साथ पूछा।

"और क्या? तुम तो जहाँ जावोगे, रसोई पानी खाकर तारीफ करने लग जावोगे।"

"और तुम—"

"मैं देखूँगी स्वभाव, गुण—सब-कुछ..."

"वहीं रहकर?...कै दिन रहोगी दूसरे के घर? मालूम रहे तो मैं भी प्रबन्ध कर लूँ।"

केतकी बिगड़ उठी।

"जाओ, बड़े वैसे हो तुम," उसने कहा—"जो मन में आवे करो।"

विन्ध्येश्वरी बाबू ने जरा उदास होकर कहा—"बिगड़ो मत, मैं तो इसीलिए कहता हूँ कि जो-कुछ करना है। अभी कर लो, फिर तो मेरी आँखें बेकार हो जायेगी। कर-धर न सकूँगा। बहू आवे। घर बेटे-बहू को सौंप, हम लोग चलें कहीं—तीर्थ-स्थान में शेष दिन काटें।"

केतकी का क्रोध उड़ गया। विन्ध्येश्वरी बाबू का हाथ पकड़, कोमल स्वर में बोली—"क्या आँखें अधिक खराब हो गई हैं?"

"अधिक क्या, डाक्टरों ने तो कहा है आधा मोतियाबिन्द बन गया है, दृष्टि तो एकदम धुँधली हो गई है। साल-भर में कहीं आपरेशन होगा बीच में तो पूरा अन्धा हो जाऊँगा। बाद में

में भी, कौन जाने ठीक हो या नहीं...."

केतकी ने आश्वासन देते हुए कहा—"चिन्ता मत करो, भगवान् ने चाहा तो इसी फागुन में विवाह हो जाएगा।"

"हाँ हो जाय तो एक चिन्ता मिटे, तुम भी कुछ आराम पाओ...."

"मुझे कौन कष्ट है।"

"तुम मानोगी थोड़े ही, होगा भी तो कहोगी सुख से हूँ—खैर, विवाह हो जाय तो अच्छा। तुम खुद ही लड़की देखना चाहती हो, है कोई नजर में ?"

"है, तो—"केतकी ने हिचकते हुए कहा—पति से झूठ बोलते उसे बड़ी शर्म मालूम हुई।

"तो जाकर देख आओ, कहाँ है ? यहीं या बाहर ?"

"बाहर ही है, देख आऊँगी। जल्दी काहे की है, प्रेम तो अभी महीना-भर घूमेगा ही।"

"तो फागुन कौन दूर है, दो ही महीना तो, तैयारी इत्यादि।"

"तुम करो तैयारी, क्या करना है, कहो ?"

"वाह ! लड़की का ठिकाना नहीं—बरात सजाओ।"

"अरे बरात जाएगी तो खाली थोड़े लौटेगी।"

"हाँ सड़क से किसी को उठा लायेगी, क्यों, है न ? तुम लड़की पसन्द कर लो। मुझे तो वही कमलेश्वरी बाबू—"

"क्या है उस लड़की में जो तुम इतना तारीफ करते हो ? अभी तो आई नहीं है, तभी इतना पक्षपात ! आ जाएगी तो मुझे निकालने पर तैयार हो जावो कहीं, तो आफत—ना, मुझे ऐसी बहू नहीं चाहिए।"

"अब लगी तुम गाली देने, लो खोजो स्वयं ही—जल्दी ही।

"अच्छी बात है। आज ही से लग जाती हूँ।" केतकी ने

कह तो दिया। विन्ध्येश्वरी बाबू खुश हो गये। "हाँ, और जरा घर बार का ख्याल..." उसने कहा।

"सो क्या मुझे मालूम नहीं है?" केतकी काम में लग गई।

दूसरे दिन ही उसे प्रेम का पत्र मिला।

केतकी पढ़कर सन्न रह गई। प्रेम ने सारा हाल लिख दिया था। नरेन्द्र राधा के विवाह की बात भी, अन्त में लिखा था—"माँ। एक दफे तुम आओ—जरूर आओ, देरी मत करना।" वह काँप उठी, क्या इरादा किया है प्रेम ने? इतनी आर्त पुकार, "जरूर आऊँगी बेटा!" उसने मन-ही-मन कहा।

विन्ध्येश्वरी बाबू से उसने कहा—

"मैं जाऊँगी सुलतान गंज।"

"गैबीनाथ के दर्शन की इच्छा तो मुझे भी है।" उन्होंने कहा "प्रेम की शादी होले।"

"नहीं मैं आज ही जाऊँगी।"

"क्यों? इतना जरूरी।"

"हाँ जरूरी है। साथ ही लड़की भी देखती आऊँगी।"

"तो मुझे तो फुर्सत नहीं हैं अभी।"

"नौकर ले जाती हूँ, और दाई रहेगी। कोई दिकत न होगी मुझे।" विन्ध्येश्वरी बाबू केतकी की इच्छा न पूरी करें यह संभव नहीं था।

"तुम्हारी मर्जी, लेकिन, ज्यादे दिन न लगाना, नहीं तो मुझे भी आना ही पड़ेगा!"

"ज्यादे दिन मैं रह सकूँगी!" केतकी ने उनकी ठोढी छूकर पूछा, "मर ही न जाऊँगी।"

नौकर दाई को लेकर वह चल दी उसी दिन। स्टेशन पर ही उसे प्रेम मिला। केतकी ने उसे देखा—देखकर शंकित हो

उठी, अस्वाभाविक रूप से आँखें चमक रही थीं प्रेम की, चेहरा कठोर था, भंगी गंभीर...

"क्या हाल है उसका ?" केतकी ने पूछा।

"बेहोश ही है।" संक्षेप में उत्तर दिया प्रेम ने, धर्मशाला न जाकर केतकी ने कहा"चलो, सीधा वहीं। "बहुत दिनों के बाद दोनों सखियों में भेंट हुई।" केतकी शकुन्तला के गले से लिपटकर बहुत रोई, दोनों के मन का मैल उन आँसुओं से धुल गया।

मीना आई, मौसी को प्रणाम करने। केतकी ने उसे हृदय से लगा लिया। "तू मेरी बेटी काहे न हुई।" उसने कहा।

"तुम्हारी ही तो है।" शकुन्तला ने कहा।

"मेरी-सी पागल तो जरूर है।" मीना सकुचित हो उठी।

केतकी ने राधा को देखा, ढाँचा-मात्र रह गई थी। वह रो उठी— "यही है राधा ?"

"हाँ मौसी ! यही हैं राधा बहन।" मीना ने उत्तर दिया, आँसू पोछते हुए, "देखो तो, कितनी कमजोर पड़ गई हैं, हमारे पापों का प्रायश्चित्त इन्हें ही करना पड़ा," मीना रो पड़ी।

"ऐसे पगली। तूने कौन पाप किये हैं। भगवान करे सभी तेरे पाप हों, रोती क्यों है अच्छी हो जायेगी," सिद्ध-हस्त नर्स की तरह केतकी ने उसे सँभाला। मीना से सारा हाल सुन लिया उसने, नरेन्द्र से भी, प्रेम से भी, और तब, अपना कर्तव्य निश्चत करने बैठी।

दो-तीन घंटा वह एकांकी बैठी रही, यहाँ तक कि मीना घबड़ा उठी। "मौसी !" उसने पुकारा। "हाँ बेटी !" केतकी का ध्यान टूटा, वह निश्चय कर चुकी थी। "इधर आ तो बेटी।" मीना और केतकी में देर तक बात होती रही, चुप-चुप, कानों-कान। शकुन्तला समझ न रही थी कि केतकी मीना से कैसे इतनी हिल गई।

जब दोनों बातचीत कर चुकीं, तो दोनों के चेहरे से चिन्ता दूर हो चुकी थी, किसी बड़े कार्य को पूरा करने की मुद्रा थी दोनों की।

"आते ही बेटी को ले लिया?" शकुन्तला ने पूछा।

"अभी क्या हुआ है, सबकुछ ले लूँगी," केतकी ने कहा।

उसके बाद उसने प्रेम को बुलाया।

प्रेम आया, उसका वह उन्मत्त वाला भाव शान्त हो चुका था।

केतकी ने गम्भीर-पूर्वक पूछा,"बाज़ी याद है प्रेम?"

"हाँ।"

"राधा मेरी हो चुकी?"

"हाँ।"

"तुम्हारा उस पर कोई दावा नहीं रह गया है।"

"हाँ।"

"अच्छी बात है। इधर से तुम निश्चिन्त हो जाओ अब। समझे?"

"हाँ।"

"और बाज़ी का दूसरा भाग?"

"कौन सा?"

"जो कहूँगी करोगे,"

"करूँगा, कहो।"

"घर चले जाओ। तुम्हारे पिता बूढ़े हो रहे हैं। उन्हें सुखी बनाना तुम्हारा कर्तव्य है। और उनकी आँखें भी कमजोर हो गई हैं, मैं भी यहाँ हूँ, तुम्हारा घर जाना ही अच्छा होगा।"

"हाँ।"

"तब जाओ। और, बेटा! याद रखो, वे तुम्हारे पिता हैं,

जो कहेंगे, तुम्हारे भले के लिए, उनका आदेश पालन करना। इसी में तुम्हारी भलाई है।"

"लेकिन माँ—" प्रेम ने कुछ कहना चाहा किन्त केतकी ने उसे बोलने का मौका नहीं दिया।

"इसमें लेकिन की गुँजाइश नहीं। मैं तुम्हारी माँ हूँ। और तुम मुझसे वचनबद्ध हो कि मेरी बातें मानोगे,"

"वचनबद्ध न भी रहता तो भी मानता।"

"शायद, खैर यहाँ वचन भी है, घर जाओ, पिता जो कहें सो करना, करोगे न ?"

कठिनाई से प्रेम ने कहा, "करूँगा"

"रही राधा, सो मेरी है, मेरे जिम्मे है। जो ठीक समझूँगी करूँगी। उस पर तुम्हारा कोई दावा नहीं है। लेकिन इतना विश्वास रखो, कि जो करूँगी उसकी भलाई ही के खयाल से।"

प्रेम का सिर फिर गया था। वह खड़ा न रह सका, बैठ गया। "माँ" उसके मुँह से निकला।

कठिनाई से आँसू रोके केतकी ने कहा, "सब समझती हूँ बेटा। लेकिन, मेरी बात मानो! मैं तुम्हारी माँ हूँ, तुम्हारी शुभ कामना ही करूँगी। राधा भी, मेरा कहना मानेगी तो दुःखी न होगी। तुम निश्चिन्त रहो...."

प्रेम अधिक बोल न सका। समझ भी न सका कि माँ क्या करेगी। उसका दिमाग एकदम बेकार हो गया था।

"तो घर चला जाऊँ ?" उसने पूछा।

"हाँ कल चले जाओ।"

"और—और—"

"वह मेरी है, तुम्हारी नहीं। वचन याद रखो।" केतकी ने कहा, "वचन दे कर फिरना मर्दों का काम नहीं।"

प्रेम उठ गया। उसके चले जाने के बाद केतकी आँसू न सभाल सकी। रो उठी।

मीना ने आ कर समझाया, "मौसी! तुम भी रोने लगोगी तो क्या होगा? हम सब को सँभालेगा कौन?"

"भगवान् सँभालेंगे बेटी। मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाती क्या करूँ, क्या न करूँ, एक ओर पागल बेटा, दूसरी ओर पागल समाज, कठिन समस्या है।"

"लेकिन समस्या को तो सुलझाना ही पड़ेगा, उसकी कठिनाई देखकर बैठ रहने से तो काम नहीं चल सकता। मौसी, तुम भी अगर यूँ बैठ रहीं, तो..."

"तो क्या करूँ?"

"यह स्वयं ठीक होता जायगा, तुम उठो।"

केतकी को मीना का धैर्य देख कर आश्चर्य हो रहा था, साथ ही वह खुश भी थी।

"मीना। अगर मैंने प्रेम को भेजा न होता, स्वयं तै किया होता।"

"धत्! वह कैसे होता?" मीना लजा गई, "जो हुआ वह कहीं अच्छा हुआ, कष्ट से ही तो नवयुग की नींव रखी जायगी!"

"तुम लोग तो नवयुग के पीछे पागल हो रही हो, यह नहीं सोचती हो कि अभी हम लोगों की क्या दशा हो जायगी।"

"यह सोचना कायरों का काम है। हमारा काम है, जिसे ठीक समझें, उसे करना।"

"सच झूठ का भेद..."

"जिसे ठीक समझें उसे करना, सच हो या झूठ, जो अच्छा है, जो उचित है, वही सत्य भी है।"

केतकी मुग्ध-सी मीना की ओर देख रही थी। आवाक, इस बाला में इतना दृढ़ विश्वास कैसे?

"तुम ईश्वर को मानती हो?" सहसा केतकी ने पूछा। मीना का चेहरा आरक्त हो गया। सिर झुक गया उसका।

"नहीं, मौसी।" उसने धीरे-से कहा।

"नहीं!"

"नहीं! न मानते हुए, यह कह देना कि मानती हूँ, और खराब होगा, मुझ में श्रद्धा नहीं, भक्ति नहीं। ईश्वर अगर है तो, मेरे लिए अज्ञेय है, इसलिये उसके पीछे परेशान नहीं होती, जो जानती हूँ, वही बहुत है।"

दूसरे दिन प्रेम चला गया। जाते समय केतकी पर जो दृष्टि डाली, वह करुणा—अविश्वास, आशा, सब से भरी थी। केतकी कठिनता से अपने के सँभाले रही।

मीना ने भी देखा, प्रेम की नजर उस पर पड़ी और तुरन्त हट भी गई। लेकिन, वह द्वेष क्यों?

नरेन्द्र था ही नहीं, प्रेम ने उसे देखा भी नहीं, राधा को भी नहीं देखा।

प्रेम को विदा कर केतकी ने नरेन्द्र को बुलाया।

"नरेन्द्र!" केतकी का स्वर कम्पित था, "तुमसे भीख माँगती हूँ।"

"कहिये।"

"राधा—"

"राधा! लेकिन राधा भीख में दी जाने वाली वस्तु नहीं है। हृदय-मस्तिष्क से युक्त प्राणी है, शायद इसे आप नहीं जानतीं।"

"जानती हूँ, हृदय से युक्त प्राणी है, इसी लिए तो कहती हूँ, उस हृदय की हत्या मत करो।"

नरेन्द्र को क्रोध आ गया।

"आप मुझे उपदेश देती हैं। लेकिन, जिस समय आप ही

लोगों ने उस हृदय की हत्या के लिए कुछ उठा न रखा था, तब यह उपदेश कहाँ गया था? मैं तो सिर्फ उसे समाज के थप्पड़ों से बचाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। राधा—अभागिनी राधा को समाज ठुकरा सकेगा। लेकिन मेरी पत्नी राधा को नहीं। समाज भी तो रुपये का भूखा है।"

"नरेन्द्र तुम पढ़े-लिखे हो, समझदार हो, क्या तुम्हारी शिक्षा ने तुम्हें यही सिखाया है कि तुम स्त्री को इतना सस्ता समझ लो। राधा तुम्हारी स्त्री होकर क्या इतना ही स्वीकार करेगी। तुम्हारी दया—यह दया ही होगी—उसे मजबूर करेगी कि वह अपने हृदय का दमन करके, तुम्हारी हो जाय, चाहे उसमें उसे मरना ही क्यों न पड़े..."

नरेन्द्र ने रोक दिया।

"आपने मुझे क्या समझा है? राधा मुझे प्रेम नहीं करती। लेकिन मैं—मैं तो उसे प्रेम करता हूँ। मेरे द्वारा उसका अनिष्ट हो यह असंभव है?"

"लेकिन तुम उसका अनिष्ट तो कर ही रहे हो, वह जबान दे चुकी है। जब तक तुम उसे मुक्ति नहीं देते, वह मुक्त नहीं समझेगी अपने को।"

"मुक्त होकर ही क्या करेगी?"

"प्रेम से विवाह!" नरेन्द्र चौंका। नेत्र विस्फारित करके उसने केतकी की ओर देखा।

"वह होगा?"

करुणा-भरी हँसी हँसकर केतकी ने कहा—"क्यों नहीं होगा नरेन्द्र!"

"समाज—"

"मैं भी तो समाज की पर्वाह नहीं करती। हाँ, मेरे सामने सिर्फ प्रेम के पिता का प्रश्न है। वे राजी नहीं होंगे, लेकिन..."

"लेकिन ?" नरेन्द्र ने पूछा।

"लेकिन यह विवाह करना ही होगा।"

"कैसे ?"

"जैसे हो।"

"नरेन्द्र चुप रह गया। देर तक सोचता रहा, फिर बोला—"आप वचन देती हैं"

"हाँ।"

"तब हो जायगा। कोई अड़चन नहीं होगी। लेकिन, मुझ पर विश्वास करना होगा।"

"क्या करोगे तुम ?" चकित होने की केतकी की बारी थी।

"झूठ बोलूँगा।

"यानी ?"

और, तब केतकी तथा नरेन्द्र में बातें हुईं। देर तक। मीना खड़ी सुनती रही।

"नरेन्द्र, भगवान् तुम्हारा भला करेंगे !" केतकी ने गद्गद होकर कहा।

मीना का चेहरा गर्व से, हर्ष से, चमक रहा था।

"भैय्या" उसने कहा—"तुमने मेरा मान रख लिया।"

"पगली ! या यूँ कहो, कि तूने मुझे सँभाल लिया है।"

"कैसे ?"

"राधा तेरी ही बहन थी, न ?"

मीना ने केतकी की ओर देखा, "मौसी, लोग भैय्या को नास्तिक—और क्या-क्या कहते हैं।"

"भगवान् करे सभी ऐसे नास्तिक हों।" केतकी ने कहा।

केतकी तथा नरेन्द्र की बातों का सार यही था कि नरेन्द्र के यहाँ रहेगी राधा—और नरेन्द्र के यहाँ से ही उसका विवाह होगा। नरेन्द्र के माता पिता नहीं थे, वही कन्यादान करेगा। समाज

यही समझेगा कि नरेन्द्र के ही घर की लड़की है। नरेन्द्र के एक चचा रंगून चले गये थे। उन्हीं की लड़की कहलायेगी राधा। इस बात को अस्वीकार करने के लिए वे चाचा नहीं थे, मर चुके थे।

गाँव में लोग बखेड़ा कर सकते हैं। इसलिए विवाह मुङ्गेर में ही होगा। नरेन्द्र को नौकरी मिली थी वहीं, वहीं जाकर रहेगा। और वहीं से सब काम सम्पन्न होगा।

मीना ने सहर्ष योग दान देना स्वीकार किया। किन्तु शकुन्तला इस सब झमेले से उकता गई थी। सखी होते हुए भी वह केतकी से सहमत नहीं थी इस बारे में।

"इस धोखा धड़ी में मैं नहीं पड़ूँगी..." उसने कहा, और चली गई दूसरे दिन मीना को खींचे लिये हुए।

"कोई हर्ज नहीं मौसी!" नरेन्द्र ने कहा। वह भी चला गया घर इत्यादि का प्रबन्ध करने।

दो-चार दिन में, राधा को स्वस्थता की ओर बढ़ता छोड़ केतकी भी लौट गई।

पार्वती और काकी, दोनों ने राधा के साथ ही नरेन्द्र के घर विवाह तक रहना स्वीकार किया था।

सब हाल सुन राधा कुछ बोली नहीं! केतकी की चरण-धूल ली थी उसने।

प्रेम घर लौट आया।

विंध्येश्वरी बाबू ने ऐनक से देखते हुए पूछा, "जल्दी लौट आये बेटा?"

"माँ यहाँ नहीं हैं, तो मेरा रहना जरूरी है," उसने संक्षेप में कहा, विंध्येश्वरी बाबू पितृभक्ति का यह प्रमाण पा सन्तुष्ट हो गये, लड़के को ज्ञान तो हुआ।

केतकी जब लौट आई, तो उसने कहा।

"लड़की देख आई हूँ।"

"कहाँ?"

"मुंगेर..."

"किन के यहाँ?"

"और केतकी ने राधा के कल्पित पिता का नाम धाम बता दिया, हृदय उसका मारे शर्म के फट रहा था—पति से झूठ! लेकिन सन्तोष यही था कि भलाई के लिए ही झूठ बोल रही है।

"तिलक-उलक—बात-चीत खतम हो चुकी?"

"हाँ, लड़की की काकी से तै हो गया है, तीन हजार तिलक,

और गहना इत्यादि अलग....” कहना न होगा, केतकी ने गहना इत्यादि सब अपना ही देना निश्चित किया था, तिलक भी स्वयं अपने पास से।

लेकिन विन्ध्येश्वरी बाबू खुश हो गये।

“प्रेम को कहा ?” उन्होंने पूछा।

“तुम ही कहो।”

और विन्ध्येश्वरी बाबू ने प्रेम को बुला, खबर सुनाई। प्रेम की आशाओं पर तुषारपात हो गया, उसने माँ की ओर देखा, शायद माँ इस विपत्ति से बचा दे।

“पिता का आदेश मानो बेटा,” केतकी नीचे देख रही थी, प्रेम का वह सहारा भी टूट गया, चुपचाप हट गया वह।

शादी की तय्यारी होने लगी।

प्रेम को किसी ओर ध्यान न था, उसे मालूम हो रहा था कि उसके साथ विश्वासघात किया गया है, उसे आश्चर्य था कि वही माँ, जिसने उसे कभी दुःख नहीं होने दिया, आज कैसे इतनी निर्मम हो रही है, कैसे, सब जानते हुए भी, उसकी ही नहीं, बल्कि एक और कन्या की हत्या करने पर लगी हुई है! वह तो विवाह करेगा ही, वचनबद्ध था, लेकिन, क्या उस वचन की पूर्ति के लिए, उसे यह अधिकार था कि वह एक अज्ञान, निर्दोष बाला का जीवन नष्ट करे।

इसी दुविधा में था वह। समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिये। शादी की तय्यारी हो रही थी, उससे अगर कुछ पूछा जाता, तो उलटा-सीधा जो मन में आता उत्तर दे देता।

और तभी जगत पहुँचा तिलक करने। प्रेम ने उसे पहले नहीं देखा था, पहचानता कैसे? और उसे इस ओर ध्यान भी न था। जब बलि ही देनी है, तो बकरी चाहे कोई रहे, कहीं की

रहे, कैसी ही रहे, हमें मतलब ?

बिन्ध्येश्वरी बाबू के उल्लास था किन्तु जगत को देख कर जरा ठेस लगी, लेकिन केतकी ने उन्हें सन्तोष दे दिया—वह तो दूर के नाते का भाई था। फिर, तिलक में, रुपये से भरा थाल पाकर बाकी की चिन्ता कौन करता ?

यथा समय बरात गई, मुर्दे की तरह प्रेम गया उसके न आने से काम न बनता इसलिए, उसके चेहरे पर अजीब उन्माद का भाव था। जिसने देखा आश्चर्य प्रगट किया, किन्तु उसकी मुद्रा देख, किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ, प्रेम मानो निष्प्राण पुतला हो, कहीं तो बैठ जाता, कहीं तो उठता, खाता। दुनिया से दूर था वह।

विवाह में भी, उसने किसी की ओर आँख उठा कर भी न देखा।

सादगी काफी थी, आडम्बर था नहीं। और, प्रेम को पर्वाह भी न थी।

कन्या की रुखसती कराकर बरात लौटी तो प्रेम का चेहरा ऐसा था मानो किसी अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का दाह-संस्कार करके लौटा हो।

घर पहुँच, वह अपने कमरे में चला गया, केतकी ने हँसकर उसे आशीर्वाद दिया था, प्रेम के तन में ज्वाला फूट पड़ी थी, यह उपहास असह्य था उसके लिए।

वह जाकर अपने कमरे की खिड़की के पास खड़ा हो गया। शाम का अन्धेरा बाहर छा रहा था, और प्रेम के हृदय में भी वैसा ही अंधकार !

कब केतकी ने प्रवेश किया, उसे ज्ञात भी नहीं। वह खोया-सा खड़ा था, खड़ा रहा, केतकी के पीछे वाली मूर्ति के पाँवों की पैंजनी की मधुर झंकार भी उसने न सुनी।

अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण स्वर में केतकी ने कहा। "बेटा, बधाई है...."

प्रेम का क्रोध रुक न सका, अत्यन्त दुःख-वितृष्णा के साथ घूम कर उसने केतकी की ओर देखा। देखा—उसके पीछे की उस अवगुंठनवती नारी को, जो कि उसकी स्त्री थी, प्रेम को उपहास की यह पराकाष्ठा मालूम हुई। धोखा देकर यह बधाई, जले पर नमक, ठीक है, वह सौतेली माँ ही न थी आखिर। उसके हृदय के दुःख को क्या समझती?

"किस बात की बधाई, सौतेली माँ?" उसने कहा, "बाजी हारने की?"

केतकी इतना बड़ा आघात खाकर सन्न रह गई, सौतेली माँ, प्रेम की? उसके चेहरे से रक्त की अंतिम बूंद भी सूख गई थी, पीला पड़ गया था चेहरा एकदम, काश! उसकी आँखें भर आईं, कठिनता से आँसू रोक कर उसने कहा—

"नहीं प्रेम! बाजी जीतने की!"

और धीरे हाथ से उसने वधु का अवगुण्ठन हटा दिया।

प्रेम ने देखा और उसके नेत्र फैल गये, वह सँभल न सका।

"माँ!" उसने टूटे स्वर से पुकारा, "माँ!" किन्तु केतकी तब तक बाहर चली गयी थी। अवगुण्ठन हट जाने से, राधा का दुर्बल चेहरा, आँखें अनझरे आँसुओं से चमकती नजर आ रही थीं।